मुनिराज योगीन्दु द्वारा रचित अपभ्रंश भाषा का महान आध्यात्मिक ग्रन्थ

जोगसारु (योगसार)

हिन्दी-पद्यानुवाद

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

सम्पादन

डॉ. वीरसागर जैन

प्रवाचक, जैनदर्शन विभाग

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली-११००१६

प्रकाशक

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-४, बापूनगर, जयपुर - ३०२०१५

प्रथम संस्करण : २ हजार
२२ जुलाई, २००५
(वीर शासन जयन्ति)

मूल्य :
पाँच रुपए

मुद्रक :
प्रिण्टौलैण्ड
बाईस गोदाम,
जयपुर

विषय–सूची

पृष्ठ	दोहा	पृष्ठ	दोहा
९	दूहा १ से २ तक	३१	दूहा ६६ से ६८ तक
१०	दूहा ३ से ५ तक	३२	दूहा ६९ से ७१ तक
११	दूहा ६ से ८ तक	३३	दूहा ७२ से ७४ तक
१२	दूहा ९ से ११ तक	३४	दूहा ७५ से ७७ तक
१३	दूहा १२ से १४ तक	३५	दूहा ७८ से ८० तक
१४	दूहा १५ से १७ तक	३६	दूहा ८१ से ८३ तक
१५	दूहा १८ से २० तक	३७	दूहा ८४ से ८६ तक
१६	दूहा २१ से २३ तक	३८	दूहा ८७ से ८९ तक
१७	दूहा २४ से २६ तक	३९	दूहा ९० से ९२ तक
१८	दूहा २७ से २९ तक	४०	दूहा ९३ से ९५ तक
१९	दूहा ३० से ३२ तक	४१	दूहा ९६ से ९८ तक
२०	दूहा ३३ से ३५ तक	४२	दूहा ९९ से १०१ तक
२१	दूहा ३६ से ३८ तक	४३	दूहा १०२ से १०४ तक
२२	दूहा ३९ से ४१ तक	४४	दूहा १०५ से १०७ तक
२३	दूहा ४२ से ४४ तक	४५	दूहा १०८
२४	दूहा ४५ से ४७ तक	४६	परिशिष्ट – १ योगसार प्रश्नोत्तरी
२५	दूहा ४८ से ५० तक	६३	परिशिष्ट – २ दोहानुक्रमणिका
२६	दूहा ५१ से ५३ तक		
२७	दूहा ५४ से ५६ तक		
२८	दूहा ५७ से ५९ तक		
२९	दूहा ६० से ६२ तक		
३०	दूहा ६३ से ६५ तक		

प्रकाशकीय

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा आचार्य योगीन्दुदेव विरचित तथा डॉ. वीरसागर जैन द्वारा सम्पादित जोगसारु (योगसार) का प्रकाशन करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। इसके पूर्व मेरे द्वारा मराठी भाषा में गद्यरूप से अनुवादित एवं सम्पादित तथा श्री मधुकरजी गडेकर द्वारा रचित मराठी भाषा में पद्यानुवाद रूप कृति का प्रकाशन किया गया, जिसका पाठकों ने भरपूर लाभ लिया है। फलतः उसके दो संस्करण प्रकाशित किये जा चुके हैं, जो गौरव का विषय है।

आध्यात्मिक सत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी का योगसार प्रवचन भी डॉ. भारिल्ल के पद्यानुवाद सहित अनेक बार प्रकाशित हो चुके हैं।

प्रस्तुत कृति का सम्पादन श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ दिल्ली के जैन दर्शन विभाग के प्रवाचक डॉ. वीरसागर ने पूर्ण मनोयोग पूर्वक किया है। ग्रंथ की विषय वस्तु के विषय में सम्पादक ने अपनी प्रस्तावना में विस्तार से प्रकाश डाला है, आशा है पाठकगण प्रस्तावना पढ़कर अपनी जिज्ञासा शांत करेंगे। योगसार मूल ग्रंथ का हिन्दी पद्यानुवाद तो इसमें दिया ही है; अन्त में प्रकाशित प्रश्नोत्तर के माध्यम से पाठक विशेषरूप से लाभान्वित होंगे, ऐसा हमें विश्वास है।

हमारे विक्रय विभाग में योगसार मराठी व हिन्दी की कैसेट्स भी उपलब्ध हैं, अन्य विषयों की कैसेट्स व सी.डी. भी उपलब्ध हैं, जिन्हें प्राप्त कर लाभ उठाया जा सकता है।

प्रस्तुत कृति को अल्पमूल्य में पहुँचाने का श्रेय दान दातारों को है, जिनकी सूची अन्यत्र प्रकाशित की गई है। सभी दान दातारों के सहयोग के लिए हम उनका आभार मानते हैं। पुस्तक की मुद्रण व्यवस्था व नयनाभिराम आवरण प्रकाशन विभाग के मैनेजर श्री अखिल बंसल की देन हैं, इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

सभी पाठक योगसार के माध्यम से योग के वास्तविक स्वरूप को समझें और अपना कल्याण करें इसी भावना के साथ –

ब्र. यशपाल जैन, एम.ए.
प्रकाशन मंत्री
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

विषय–सुख

विषय–सुहइ बे दिवहड़ा पुण दुक्खहँ परिवाड़ि।
भुतलउ जीव म वाहि तुहुँ अप्पण खंध कुहाड़ि।।

अर्थ – हे जीव! ये विषय–सुख मात्र दो दिन के हैं बस! उसके बाद तो अपार दुःखों की परम्परा ही प्राप्त होने वाली है, अतः तू इनमें मत भूल, स्वयं ही अपने कन्धे पर कुल्हाड़ी मत चला।

– मुनिराज योगीन्दु देव
परमात्मप्रकाश, दूहा २/१३८

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करने वाले दातारों की सूची

२५१ रुपये देनेवाले – ● श्री बाबूलाल तोतारामजी जैन, भुसावल ● श्री शान्तिलालजी सोनाज, अकलूज ● श्रीमती रश्मिदेवी वीरेशजी कासलीवाल, सूरत ● श्रीमती पतासीदेवी ध.प. श्री इन्द्रचंदजी पाटनी, लाँडनू ● स्व. ऋषभकुमार जैन सुपुत्र श्री सुरेशकुमारजी जैन, पिड़ावा ● श्रीमती किरण जैन राजेशकुमारजी जैन, उज्जैन ● श्री नेमीचंदजी अग्रवाल, चित्तौड़गढ़ ● श्रीमती भँवरीदेवी कासलीवाल, जयपुर ● ब्र. कुसुमताई पाटील, कुंभोज।

२०१ रुपये देनेवाले – ● श्रीमती श्रीकान्ताबाई ध.प. श्री पूनमचन्दजी छाबड़ा, इन्दौर ● स्व. श्रीमती सीमा काला की स्मृति में ध.प. श्री राजेशकुमारजी काला परिवार, इन्दौर ● श्री अरविन्दकुमारजी जैन, मऊ ● ब्र. हंसाबेन, सोनगढ़ ● श्रीमती आशा डूगरिया हस्ते श्री चाँदमलजी व्हौरा, चित्तौड़गढ़ ● श्री ताराचन्दजी सेठी, जयपुर ●श्रीमती ललितादेवी बाकलीवाल, जयपुर ● श्री दिनेशजी काला, जयपुर ● श्री सरदारमलजी गोधा, जयपुर।

२०० रुपये देनेवाले – ● श्रीमती प्रतिमा जैन, कलकत्ता ● श्री रमेशचन्दजी जैन, छिन्दवाड़ा ● श्रीमती निकिता प्रियंक सेठी, कलकत्ता ● श्री सोहनलालजी पहाड़िया, कुचामनसिटी।

१०१ रुपये देनेवाले – ● श्रीमती पानादेवी मोहनलालजी सेठी, गोहाटी।

कुल राशि ४,७१८.००

प्रस्तावना

प्रस्तुत ग्रन्थ का नाम 'योगसार' (जोगसारु) है। इसके रचयिता मुनिराज योगीन्दु देव हैं। मुनिराज योगीन्दु देव का पूर्ण जीवनवृत्त अद्यावधि अज्ञात है, परन्तु विद्वानों की शोध–खोज से इतना सुस्पष्ट हो गया है कि वे आज से लगभग १३०० वर्ष पूर्व विक्रम की छठी–सातवीं शताब्दी में हुए थे और उन्होंने कम से कम इन २ ग्रन्थों की रचना अवश्य की थी :– १. परमात्मप्रकाश और २. योगसार। यद्यपि इन दो ग्रन्थों के अतिरिक्त 'अमृताशीति' और 'निजात्माष्टक' आदि कतिपय अन्य ग्रन्थ भी उनके द्वारा रचित बताये जाते हैं, पर अभी इस सम्बन्ध में विद्वद्गण पूर्ण प्रामाणिकता के साथ कुछ कहने की स्थिति में नहीं हैं। जो भी हो, 'परमात्मप्रकाश' और 'योगसार' – ये दो ग्रन्थ ही उनकी अक्षयकीर्ति के पूर्ण अधिकारी हैं।

इन ग्रन्थों के अध्ययन से यह भली–भाँति ज्ञात होता है कि इनके रचयिता मुनिराज योगीन्दु देव जैन–सिद्धान्त एवं जैन–अध्यात्म के उद्भट ज्ञाता थे और न केवल ज्ञाता थे अपितु उसे अत्यन्त सरल–सुबोध ढंग से समझाने में भी पारंगत थे। उनका विषय–प्रतिपादन इतना स्पष्ट, सन्तुलित एवं सुलझा हुआ है कि एक साधारण व्यक्ति भी सुलभता से तत्त्वज्ञान कर सकता है, उसे कहीं उलझन महसूस नहीं होती। संक्षेप में सार बात कहना कोई मुनिराज योगीन्दु देव से सीखे।

मुनिराज योगीन्दु देव की काव्यकला भी अतीव मनोहर थी। सबसे छोटे छन्द 'दूहा' में भी उन्होंने इतनी कुशलता एवं सरलता के साथ जिनवाणी के गूढ़–गम्भीर भावों को प्रस्तुत कर दिया है कि हर कोई पाठक मंत्रमुग्ध–सा हो जाता है।

प्रस्तुत 'योगसार' उनका योग विषय का श्रेष्ठ आध्यात्मिक ग्रन्थ है। इसमें उन्होंने 'योग' का इतना सुन्दर वर्णन किया है कि अन्यत्र दुर्लभ है। आजकल 'योग' (YOGA) की बहुत चर्चा चलती है। उन सभी योग–प्रेमियों को एक बार आग्रह–मुक्त होकर इस 'योगसार' का आद्योपान्त गहराई से अध्ययन–चिन्तन अवश्य करना चाहिए। आशा है उन्हें इससे सम्यक् दिशानिर्देश प्राप्त होगा।

योगसार की भाषा 'अपभ्रंश' है, जो उस समय की एक प्रतिष्ठित लोकभाषा थी। यह भाषा प्रकृति से यद्यपि संस्कृत–प्राकृत जैसी है, परन्तु हमारी आधुनिक हिन्दी भाषा के अत्यधिक नजदीक है, अतः इसे समझना कठिन नहीं है, बहुत सरल है।

इस 'योगसार' में कुल १०८ दोहे (या दूहे) हैं, जिनमें ३ सोरठे (सोरठी दूहा) और १ चौपाई (चउपदी दूहा) भी सम्मिलित हैं। सभी एक से बढ़कर एक हैं, रत्न हैं। मैं इन्हें स्थूलतया मिश्री के टुकड़ों की उपमा देता हूँ। जिसप्रकार कोई रसिक पुरुष मिश्री के टुकड़ों को एक-एक करके मुँह में रखकर उन्हें खूब चूसता है और अत्यन्त हर्ष का अनुभव करता है, उसीप्रकार तत्त्वरसिक - योगरसिक जीव इन दोहों को अपने उपयोग में जमाकर बारम्बार गुनगुनाता है और उनके अभिप्राय के तल तक पहुँचता हुआ अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करता है।

तो फिर समझ लीजिए ये १०८ मिश्री के टुकड़े हैं जो आपको मुनिराज योगीन्दुदेव ने भेंट किये हैं। आप इन्हें खूब चूसिए, आराम से चूसिए, पूरी शान्ति से चूसिए, एकान्त में चूसिए। किसी हड़बड़ी में इन्हें फोड़कर खा जाने की जल्दबाजी मत कीजिए। इनका पूरा-पूरा स्वाद लीजिए, सम्पूर्ण मनोयोग से इनका रस पीजिए। आपका अवश्य मंगल होगा। हो सके तो इस सन्दर्भ में बैरिस्टर चम्पतराय जैन का यह सुन्दर वाक्य भी हमेशा ध्यान में रखिए जो उन्होंने अपनी महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'Key of Knowledge' में लिखा है - Knowledge is like food it becomes ours only when it is absorbed assimilated and digested by the intellect अर्थात् ज्ञान भोजन के समान है। वह तभी हमारा हो पाता है जब हम उसे भलीभाँति पचा पाते हैं।

प्रस्तुत संस्करण मैंने श्री दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ मन्दिर, ग्रीनपार्क, नई दिल्ली की दैनिक शास्त्रसभा में 'योगसार' का स्वाध्याय करते समय तैयार किया था, जिसमें सर्वप्रथम मात्र मूलग्रन्थ के दूहों को सम्पादित करके उनका सरल-सुबोध हिन्दी अर्थ ही लिखा गया था, परन्तु शनैः शनैः बहुत परिमार्जन हो गया और सभी की भावना सर्वजनलाभाय इसके प्रकाशन की हो गई।

इसके बाद स्वाध्याय सम्पूर्ण होने पर मैंने ग्रन्थ में प्रतिपादित विषय को एक बार पुनः व्यवस्थित करते हुए दोहराने और स्थाई बनाने के लिए इसकी एक संक्षिप्त प्रश्नोत्तरी भी बनाई, जिससे सभी को बहुत लाभ हुआ; अतः प्रस्तुत संस्करण के परिशिष्ट में उसे भी मैं सभी लोगों के लाभार्थ दे रहा हूँ। इसके माध्यम से लोग 'योगसार' ग्रन्थ का परीक्षा-पद्धति से भी अध्ययन-अध्यापन कर सकते हैं।

अपभ्रंश भाषा के ज्ञान से रहित सामान्य पाठकों के लाभार्थ ही प्रस्तुत संस्करण में डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल कृत हिन्दी-पद्यानुवाद भी प्रत्येक दोहे के साथ दिया गया है, ताकि वे उसे कंठस्थ करके गुनगुनाते हुए हृदयंगम कर सकें।

जोगसारु (योगसार)

ग्रन्थ का कोई भी दोहा सहजता से खोजा जा सके - इसलिए एक परिशिष्ट में 'दोहानुक्रमणिका' भी दी गई है।

इसके अतिरिक्त प्रस्तुत संस्करण में मैंने कहीं-कहीं मूल पाठ के साथ उसके प्रमुख पाठान्तरों को भी पाद-टिप्पणी में देने की चेष्टा की है, परन्तु अपने सामान्य पाठकों को उसमें बहुत नहीं समझाया है, क्योंकि उनसे उनका चित्त इस ग्रन्थ के आध्यात्मिक विषय में एकाग्र नहीं हो पाता। फिर मैंने यह भी अनुभव किया कि उनमें से अधिकांश पाठभेद, अकार, उकार, ओकार मात्र के हैं जो इस ग्रन्थ की अत्यधिक लोकप्रियता एवं अपभ्रंश भाषा के लचीलेपन (flexibility) के कारण हो गये होंगे; अतः उनसे इन अध्यात्मप्रेमी सामान्य पाठकों को परिचित कराने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है।

अंत में, हम सभी 'योगसार' का स्वाध्याय करके उत्तम योगी बनें - इस पवित्र भावना के साथ मैं विराम लेता हूँ।

- वीरसागर जैन

अध्यात्मकवि मुनिराज योगीन्दु

आचार्य जोइन्दु (योगीन्दु) का अपभ्रंश भाषा पर अपूर्व अधिकार है। वे द्वितीय श्रुतस्कन्ध की परम्परा में शुद्ध अध्यात्म का उपदेश करनेवाले कुन्दकुन्दाचार्य के परवर्ती अध्यात्म कवि हैं। 'परमात्मप्रकाश' और 'योगसार' उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। उनकी रचनाओं में आत्मानुभूति व्याप्त है। बहिरात्मा से परमात्मा होने की यात्रा का उसमें काव्यमय वर्णन है। उनकी रहस्यमयी रचनाओं का प्रभाव परवर्ती अपभ्रंश कवियों और हिन्दी के सन्त कवियों पर प्रचुरता से पड़ा है। विख्यात सन्त कवि कबीर के क्रान्तिकारी आध्यात्मिक विचारों पर जोइन्दु का प्रभाव सरलता से देखा जा सकता है। इनकी रचनाओं का विषय साम्प्रदायिक न होकर शुद्ध आध्यात्मिक है, इसलिए इसकी उपादेयता सर्वत्र है। जोइन्दु के आत्मा सम्बन्धी विचार सार्वकालिक और सार्वभौमिक हैं। भौतिकता से उत्पन्न संघर्षों से भरे-पूरे आज के मानवीय जीवन के लिए वे परम उपयोगी हैं। उनकी इस विशेषता के कारण ही उन्हें लोकदर्शी परम्परा का संदेशवाहक भी कहा जा सकता है।.... अपने विचारों को उन्होंने सरल कविता में प्रकट किया है। उनकी पुनरुक्तियाँ श्रोताओं और पाठकों के मानस पर उनके द्वारा अभिव्यक्त आध्यात्मिकता का अमिट प्रभाव बनाये रखने के उद्देश्य को लिये हुए हैं। उनके उपदेशों में उपनिषदों जैसा प्रवाह और सरसता है, परम मांगलिकता है।

- प्रो. प्रवीणचन्द जैन

'जैनविद्या' का योगीन्दु विशेषांक, पृष्ठ-६

हमारे यहाँ प्राप्त महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

मोक्षशास्त्र/चौबीस तीर्थंकर महापुराण
बृहद् जिनवाणी संग्रह
रत्नकरण्डश्रावकाचार/समयसार
मोक्षमार्ग प्रवचन भाग-१,२,३,४
प्रवचनसार/क्षत्रचूड़ामणि
समयसार नाटक/मोक्षमार्ग प्रकाशक
सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका भाग २ (पूर्वार्द्ध + उत्तरार्द्ध) एवं भाग ३
बृहद् द्रव्यसंग्रह/जिनेन्द्र अर्चना
दिव्यध्वनिसार प्रवचन/नियमसार
योगसार प्रवचन/तीनलोकमंडल विधान
समयसार कलश/चिन्तन की गहराईयाँ
प्रवचनरत्नाकर भाग १ से ११ तक
नयप्रज्ञापन/समाधितंत्र प्रवचन
पं. टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्व
समयसार अनुशीलन सम्पूर्ण भाग १,२,३,४,५
आचार्य अमृतचन्द्र : व्यक्तित्व और कर्तृत्व
पंचास्तिकाय संग्रह/सिद्धचक्र विधान
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव
भावदीपिका/कार्तिकेयानुप्रेक्षा
परमभावप्रकाशक नयचक्र
पुरुषार्थसिद्ध्युपाय/ज्ञानगोष्ठी
सूक्तिसुधा/आत्मा ही है शरण/आत्मानुशासन
संस्कार/इन भावों का फल क्या होगा
इन्द्रध्वज विधान/धवलासार
रामकहानी/गुणस्थान विवेचन
सुखी जीवन/विचित्र महोत्सव
सत्य की खोज/बिखरे मोती
निर्विकल्प आत्मानुभूति के पूर्व
तीर्थंकर भगवान महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ
श्रावकधर्मप्रकाश/कल्पद्रुम विधान
वी.वि. पाठमाला भाग १,२,३
वी.वि. प्रवचन भाग १ से ६ तक
तत्त्वज्ञान तरंगणी/रत्नत्रय विधान
भक्तामर प्रवचन/बारह भावना : एक अनुशीलन
धर्म के दशलक्षण/विदाई की बेला
नवलब्धि विधान/बीस तीर्थंकर विधान
पंचमेरु नंदीश्वर विधान/रत्नत्रय विधान
सुखी होने का उपाय भाग १ से ८ तक
जैनतत्त्व परिचय/करणानुयोग परिचय
आ. कुन्दकुन्द और उनके टीकाकार
कालजयी बनारसीदास
बालबोध भाग १,२,३
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १,२
छहढाला (सचित्र)/भ. ऋषभदेव/शीलवान सुदर्शन
प्रशिक्षण निर्देशिका/जैन विधि-विधान
क्रमबद्धपर्याय/दृष्टि का विषय
बारसाणुवेक्खा/चौबीस तीर्थंकर पूजा
गागर में सागर/आप कुछ भी कहो
पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव
जैनधर्म की कहानियाँ भाग १ से १५ तक
अहिंसा के पथ पर/जिनवरस्य नयचक्रम्
णमोकार महामंत्र/वीतराग-विज्ञान प्रवचन भाग-५
चौसठ ऋद्धि विधान/कारणशुद्धपर्याय
दशलक्षण विधान/आचार्य कुन्दकुन्ददेव
पंचपरमेष्ठी विधान/विचार के पत्र विकार के नाम
आचार्य कुन्दकुन्द और उनके पंच परमागम
परीक्षामुख/मुक्ति का मार्ग
युगपुरुष कानजीस्वामी/सामान्य श्रावकाचार
अलिंगग्रहण प्रवचन/जिनधर्म प्रवेशिका
मैं कौन हूँ/सत्तास्वरूप/वीर हिमाचलतैं निकसी
समयसार : मनीषियों की दृष्टि में
व्रती श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएँ/पदार्थ-विज्ञान
मैं ज्ञानानन्दस्वभावी हूँ/महावीर वंदना (कैलेण्डर)
वस्तुस्वातंत्र्य/भरत-बाहुबली नाटक
शास्त्रों के अर्थ समझने की पद्धति
सुख कहाँ है/सिद्धस्वभावी ध्रुव की ऊर्ध्वता
मैं स्वयं भगवान हूँ/णमोकार एक अनुशीलन
रीति-नीति/गोली का जवाब गाली से भी नहीं
समयसार कलश पद्यानुवाद/अष्टपाहुड़
योगसार पद्यानुवाद/कुन्दकुन्दशतक पद्यानुवाद
अर्चना/शुद्धात्मशतक पद्यानुवाद
षट्कारक अनुशीलन/अपनत्व का विषय
भ. नेमिनाथ/भ. पार्श्वनाथ/भ. शान्तिनाथ

मुनिराज योगीन्दु द्वारा रचित

जोगसारु (योगसार)

(दूहा-१)

णिम्मल-झाण-परिट्ठिया, कम्म-कलंक डहेवि।
अप्पा लद्धउ जेण परु, ते परमप्प णवेवि।।

(हरिगीत)

सब कर्ममल का नाश कर अर प्राप्त कर निज-आतमा।
जो लीन निर्मल ध्यान में नम कर निकल परमातमा।।

जिसने निर्मल ध्यान में पूर्णतः स्थित होकर कर्मरूपी कलंक को जला दिया है और अपने आत्मा को उपलब्ध कर लिया है, उस परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ।

(दूहा-२)

घाइ-चउक्कहँ किउ विलउ[१], णंत-चउक्कु पदिट्ठु।
तह जिणइंदहँ पय णविवि, अक्खमि कव्वु सु-इट्ठु।।

(हरिगीत)

सब नाश कर घनघाति अरि अरिहंत पद को पा लिया।
कर नमन उन जिनदेव को यह काव्यपथ अपना लिया।।

जिन्होंने चार घातिया कर्मों का नाश करके अनन्त चतुष्टय को प्रकट किया है, उन जिनेन्द्र देव के चरणों को नमस्कार करके मैं यहाँ अत्यन्त इष्ट काव्य को कहता हूँ।

---

१. पाठान्तर : घाइचउक्क हनेवि किउ।

(दूहा–३)

संसारहँ भयभीयहँ, मोक्खहँ लालसियाहँ।
अप्पा–संबोहण–कयइ, दोहा एक्कमणाहँ।।

(हरिगीत)

है मोक्ष की अभिलाष अर भयभीत हैं संसार से।
है समर्पित यह देशना उन भव्य जीवों के लिए।।

जो जीव संसार से भयभीत हैं और मोक्ष के लिए लालायित हैं, उनके लिए और अपने आप को भी संबोधित करने के लिए मैंने एकाग्रचित से इन दोहों की रचना की है।

(दूहा–४)

कालु अणाइ अणाइ जिउ, भव–सायरु जि अणंतु।
मिच्छा–दंसण–मोहियउ, णवि सुह दुक्ख जि पत्तु।।

(हरिगीत)

अनन्त है संसार–सागर जीव काल अनादि हैं।
पर सुख नहीं, बस दुःख पाया मोह–मोहित जीव ने।।

काल अनादि–अनन्त है, जीव अनादि–अनन्त है और यह संसार–सागर भी अनादि–अनन्त है। यहाँ मिथ्यादर्शन से मोहित जीव ने कभी भी सुख नहीं प्राप्त किया, अपितु दुःख ही प्राप्त किया।

(दूहा–५)

जइ बीहउ चउ–गइ–गमण, तो पर–भाव चएहि।
अप्पा झायहि णिम्मलउ, जिम सिव–सुक्ख लहेहि।।

(हरिगीत)

भयभीत है यदि चर्तुगति से त्याग दे परभाव को।
परमातमा का ध्यान कर तो परमसुख को प्राप्त हो।।

हे जीव ! यदि तू चतुर्गति के भ्रमण से भयभीत है, तो परभाव का त्याग कर और निर्मल आत्मा का ध्यान कर, ताकि तू मोक्ष–सुख को प्राप्त कर सके।

(दूहा–६)

ति–पयारो अप्पा मुणहि, परु अंतरु बहिरप्पु।
पर झायहि अंतर–सहिउ, बाहिरु चयहि णिभंतु।।

(हरिगीत)

बहिरातमापन त्याग जो बन जाय अन्तर–आतमा।
ध्यावे सदा परमातमा बन जाय वह परमातमा।।

आत्मा तीन प्रकार का है – परमात्मा, अन्तरात्मा और बहिरात्मा। इनमें से अन्तरात्मा होकर परमात्मा का ध्यान करो और भ्रान्ति–रहित होकर बहिरात्मा का त्याग कर दो।

(दूहा–७)

मिच्छा–दंसण–मोहियउ, परु अप्पा ण मुणेइ।
सो बहिरप्पा जिण–भणिउ, पुण संसार भमेइ।।

(हरिगीत)

मिथ्यात्वमोहित जीव जो वह स्व–पर को नहिं जानता।
संसार–सागर में भ्रमे दृगमूढ़ वह बहिरातमा।।

जो जीव मिथ्यादर्शन से मोहित है और परमात्मा (अथवा स्व और पर) को नहीं पहिचानता है, उसे जिनेन्द्र देव ने बहिरात्मा कहा है। वह पुनः पुनः संसार में परिभ्रमण करता है।

(दूहा–८)

जो परियाणइ अप्पु परु, जो परभाव चएइ।
सो पंडिउ अप्पा मुणहु, सो संसारु मुएइ।।

(हरिगीत)

जो त्यागता परभाव को अर स्व–पर को पहिचानता।
है वही पण्डित आत्मज्ञानी स्व–पर को जो जानता।।

जो जीव परमात्मा (अथवा स्व और पर) को पहिचानता है और परभावों का त्याग कर देता है, उसे पंडित–आत्मा (अन्तरात्मा) समझो। वह संसार को छोड़ देता है।

(दूहा–९)

णिम्मलु णिक्कलु सुद्धु जिणु, विण्हु बुद्धु सिवु संतु।
सो परमप्पा जिण–भणिउ, एहउ जाणि णिभंतु।।

(हरिगीत)

जो शुद्ध शिव जिन बुद्ध विष्णु निकल निर्मल शान्त है।
बस है वही परमातमा जिनवर–कथन निर्भ्रान्त है।।

जो निर्मल है, निष्कल है, शुद्ध है, जिन है, विष्णु है, बुद्ध है, शिव है और शान्त है उसे जिनेन्द्रदेव ने परमात्मा कहा है – ऐसा निःसन्देह जानो।

(दूहा–१०)

देहादिउ जे पर कहिय, ते अप्पाणु मुणेइ।
सो बहिरप्पा जिण–भणिउ, पुणु संसारु भमेइ।।

(हरिगीत)

जिनवर कहे देहादि पर जो उन्हें ही निज मानता।
संसार–सागर में भ्रमे वह आतमा बहिरातमा।।

जो जीव, देह आदि पदार्थों को, जो कि पर कहे गये हैं, आत्मा समझता है, उसे जिनेन्द्र देव ने बहिरात्मा कहा है। वह संसार में पुनः पुनः परिभ्रमण करता रहता है।

(दूहा–११)

देहादिउ जे पर कहिय, ते अप्पाणु ण होहि।
इउ जाणेविणु जीव तुहुँ, अप्पा अप्प मुणेहि।।

(हरिगीत)

देहादि पर जिनवर कहें ना हो सकें वे आतमा।
यह जानकर तू मान ले निज आतमा को आतमा।।

हे जीव ! ये जो देह आदि पदार्थ हैं वे पर कहे गये हैं; वे आत्मा नहीं हो सकते। – यह जानकर तू आत्मा को ही आत्मा मान।

(दूहा–१२)

अप्पा अप्पउ जइ मुणहि, तो णिव्वाणु लहेहि।
पर अप्पा जइ मुणहि तुहुँ, तो संसारु भमेहि।।

(हरिगीत)

तू पायगा निर्वाण माने आतमा को आतमा।
पर भवभ्रमण हो यदी जाने देह को ही आतमा।।

हे जीव ! यदि तू आत्मा को ही आत्मा समझेगा तो निर्वाण प्राप्त करेगा और यदि पर को आत्मा मानेगा तो संसार में परिभ्रमण करेगा।

(दूहा–१३)

इच्छा–रहियउ तव करहि, अप्पा अप्पु मुणेहि।
तो लहु पावहि परम–गई, फुडु संसारु ण एहि।।

(हरिगीत)

आतमा को जानकर इच्छारहित यदि तप करे।
तो परमगति को प्राप्त हो संसार में घूमे नहीं।।

हे भाई ! यदि तू इच्छा–रहित होकर तप करे और आत्मा को ही आत्मा समझे, तो शीघ्र ही परमगति को प्राप्त कर ले और निश्चित रूप से पुनः संसार में न आवे।

(दूहा–१४)

परिणामे बंधु जि कहिउ, मोक्ख वि तह जि वियाणि।
इउ जाणेविणु जीव तुहुँ, तहभाव हु परियाणि।।

(हरिगीत)

परिणाम से ही बंध है अर मोक्ष भी परिणाम से।
यह जानकर हे भव्यजन ! परिणाम को पहिचानिये।।

हे जीव ! परिणाम से ही बंध कहा है और परिणाम से ही मोक्ष कहा है, अतः तू इस बात को अच्छी तरह जानकर अपने भावों को पहिचान।

(दूहा–१५)

अह पुणु अप्पा णवि मुणहि, पुण्णु जि करहि असेस।
तो वि ण पावहि सिद्ध–सुहु, पुणु संसारु भमेस।।

(हरिगीत)

निज आतमा जाने नहीं अर पुण्य ही करता रहे।
तो सिद्धसुख पावे नहीं संसार में फिरता रहे।।

हे जीव ! यदि तू आत्मा को नहीं जानेगा और केवल पुण्य ही पुण्य करता रहेगा तो भी सिद्धसुख को नहीं पा सकेगा, अपितु पुनः पुनः संसार में ही भ्रमण करेगा।

(दूहा–१६)

अप्पा–दंसणु एक्कु परु, अण्णु ण किं पि वियाणि।
मोक्खहँ कारण जोइया, णिच्छइँ एहउ जाणि।।१६।।

(हरिगीत)

निज आतमा को जानना ही एक मुक्तिमार्ग है।
कोइ अन्य कारण है नहीं हे योगिजन! पहिचान लो।।

हे योगी ! एक आत्मदर्शन ही मोक्ष का कारण है, अन्य कुछ भी नहीं – ऐसा तू निश्चित रूप से जान।

(दूहा–१७)

मग्गण–गुणठाणइ कहिय, विवहारेण वि दिट्ठि।
णिच्छय–णइँ अप्पा मुणहि, जिम पावहु परमेट्ठि।।

(हरिगीत)

मार्गणा गुणथान का सब कथन है व्यवहार से।
यदि चाहते परमेष्ठिपद तो आतमा को जान लो।।

हे जीव ! मार्गणास्थान और गुणस्थान का कथन तो व्यवहारदृष्टि से किया गया है, अतः तू निश्चयनय से कथित आत्मा को पहिचान, जिससे परमेष्ठी पद प्राप्त हो।

(दूहा–१८)

गिहि–वावार–परिट्ठिया, हेयाहेउ मुणंति।
अणुदिणु झायहिं देउ जिणु, लहु णिव्वाणु लहंति।।

(हरिगीत)

घर में रहें जो किन्तु हेयाहेय को पहिचानते।
वे शीघ्र पावें मुक्तिपद, जिनदेव को जो ध्यावते।।

जो जीव गृह–व्यापार में स्थित होते हुए भी हेयाहेय (हेय–उपादेय/हेय–ज्ञेय–उपादेय) को पहिचानते हैं और प्रतिदिन जिनदेव का ध्यान करते हैं, वे शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

(दूहा–१९)

जिणु सुमिरहु जिणु चिंतवहु, जिणु झायहु सुमणेण।
सो झायंतहँ परम–पउ, लब्भइ एक्क–खणेण।।

(हरिगीत)

तुम करो चिन्तन स्मरण अर ध्यान आतमदेव का।
बस एक क्षण में परमपद की प्राप्ति हो इस कार्य से।।

हे भाई ! शुद्ध मन से जिनदेव का स्मरण करो, जिनदेव का ही चिन्तन करो और जिनदेव का ही ध्यान करो, ताकि एक क्षण में परमपद की प्राप्ति हो।

(दूहा–२०)

सुद्धप्पा अरु जिणवरहँ, भेउ म किं पि वियाणि।
मोक्खहँ कारण जोइया, णिच्छइँ एउ वियाणि।।

(हरिगीत)

मोक्षमग में योगिजन यह बात निश्चय जानिये।
जिनदेव अर शुद्धातमा में भेद कुछ भी है नहीं।।

हे योगी ! शुद्धात्मा और जिनवर में कुछ भी अन्तर मत समझो और ये ही मोक्ष के कारण हैं – ऐसा निश्चित रूप से समझो।

(दूहा-२१)

जो जिणु सो अप्पा मुणहु, इहु सिद्धंतहँ सारु।
इउ जाणेविणु जोइयहो, अण्णु म करहु वियप्पु।।

(हरिगीत)

सिद्धान्त का यह सार माया छोड़ योगी जान लो।
जिनदेव अर शुद्धातमा में कोई अन्तर है नहीं।।

हे योगी ! सम्पूर्ण सिद्धान्तों का सार यह है कि जो जिन है वही आत्मा है, अतः तुम इसे जानो और सर्व मायाचार को छोड़ दो।

(दूहा-२२)

जो परमप्पा सो जि हउँ, जो हउँ सो परमप्पु।
इउ जाणेविणु जोइया, अण्णु म करहु वियप्पु।।

(हरिगीत)

है आतमा परमातमा परमातमा ही आतमा।
हे योगिजन ! यह जानकर कोई विकल्प करो नहीं।।

हे योगी ! जो परमात्मा है वही मैं हूँ और जो मैं हूँ वही परमात्मा है – ऐसा जानो और अन्य कुछ भी विकल्प मत करो, बस।

(दूहा-२३)

सुद्ध-पएसहँ पूरियउ, लोयायास-पमाणु।
सो अप्पा अणुदिणु मुणहु, पावहु लहु णिव्वाणु।।

(हरिगीत)

परिमाण लोकाकाश के जिसके प्रदेश असंख्य हैं।
बस उसे जाने आतमा निर्वाण पावे शीघ्र ही।।

हे योगी ! शुद्ध-प्रदेशों से परिपूर्ण लोकाकाश-प्रमाण आत्मा की नित्य श्रद्धा करो, ताकि शीघ्र निर्वाण प्राप्त हो।

(दूहा-२४)

णिच्छइँ लोय-पमाणु मुणि, ववहारेँ सुसरीरु।
एहउ अप्प-सहाउ मुणि, लहु पावहि भव-तीरु।।

(हरिगीत)

व्यवहार देहप्रमाण अर परमार्थ लोकप्रमाण है।
जो जानते इस भाँति वे निर्वाण पावें शीघ्र ही।।

हे योगी ! इस आत्मा का स्वभाव निश्चय से लोकाकाश-प्रमाण है और व्यवहार से स्व-शरीर-प्रमाण है। तुम इसको जानो, ताकि शीघ्र संसार-सागर का किनारा प्राप्त हो।

(दूहा-२५)

चउरासी लक्खहिं फिरिउ, कालु अणाइ अणंतु।
पर सम्मत्तु ण लद्धु जिय, एहउ जाणि णिभंतु।।

(हरिगीत)

योनि लाख चुरासि में बीता अनन्ता काल है।
पाया नहीं सम्यक्त्व फिर भी बात यह निर्भ्रान्त है।।

अहो ! इस जीव ने अनादि-अनन्त काल से चौरासी लाख योनियों में परिभ्रमण किया है और सब कुछ प्राप्त किया है, परन्तु निश्चित समझो कि कभी सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं किया।

(दूहा-२६)

सुद्ध सचेयणु बुद्धु जिणु, केवल-णाण-सहाउ।
सो अप्पा अणुदिणु मुणहु, जइ चाहहु सिव-लाहु।।

(हरिगीत)

यदि चाहते हो मुक्त होना चेतनामय शुद्ध जिन।
अर बुद्ध केवलज्ञानमय निज आतमा को जान लो।।

हे योगी ! यह आत्मा शुद्ध है, सचेतन है, बुद्ध है, जिन है और केवलज्ञान स्वभावी है। यदि तुम मोक्ष चाहते हो तो इसकी नित्य श्रद्धा करो।

(दूहा–२७)

जाम ण भावहि जीव तुहुँ, णिम्मल अप्प–सहाउ।
ताम ण लब्भइ सिव–गमणु, जहिं भावइ तहिं जाउ।।

(हरिगीत)

जबतक न भावे जीव निर्मल आतमा की भावना।
तबतक न पावे मुक्ति यह लख करो वह जो भावना।।

हे जीव ! जब तक तू निर्मल आत्मस्वभाव की भावना नहीं करेगा, तब तक मोक्ष को नहीं प्राप्त कर सकता। जहाँ इच्छा हो, वहाँ जा।

(दूहा–२८)

जो तइलोयहँ झेउ जिणु, सो अप्पा णिरु वुत्तु।
णिच्छय–णइँ एमइ भणिउ, एहउ जाणि णिभंतु।।

(हरिगीत)

त्रैलोक्य के जो ध्येय वे जिनदेव ही हैं आतमा।
परमार्थ का यह कथन है निर्भ्रान्त यह तुम जान लो।।

हे भाई ! निश्चयनय ऐसा कहता है कि जो तीन लोक का ध्येय है, जिन है, वही शुद्ध आत्मा है। तू उसे निःसन्देह जान ! उसमें भ्रान्ति मत कर।

(दूहा–२९)

वय–तव–संजम–मूलगुण, मूढहँ मोक्ख ण वुत्तु।
जाव ण जाणइ इक्क पर, सुद्धउ भाउ पवित्तु।।

(हरिगीत)

जबतक न जाने जीव परमपवित्र केवल आतमा।
तबतक न व्रत तप शील संयम मुक्ति के कारण कहे।।

जब तक यह जीव एक परमशुद्ध पवित्र भाव को नहीं जानता, तब तक मूढ़ है और ऐसे मूढ़ जीव के व्रत, तप, संयम और मूलगुणों को मोक्ष का कारण नहीं कहा गया है।

(दूहा–३०)

जइ णिम्मल अप्पा मुणइ, वय–संजम–संजुत्तु।
तो लहु पावइ सिद्धि–सुह, इउ जिणणाहहँ उत्तु।।

(हरिगीत)

जिनदेव का है कथन यह व्रत शील से संयुक्त हो।
जो आतमा को जानता वह सिद्धसुख को प्राप्त हो।।

जिनेन्द्र देव ने कहा है कि यदि कोई जीव निर्मल आत्मा को पहिचानता है और व्रत–संयम से युक्त होता है तो वह शीघ्र ही सिद्धि–सुख को प्राप्त करता है।

(दूहा–३१)

वउ तउ संजमु सीलु जिय, ए सव्वइँ अकयत्थु।
जाव ण जाणइ इक्क परु, सुद्धउ भाउ पवित्तु।।

(हरिगीत)

जबतक न जाने जीव परमपवित्र केवल आतमा।
तबतक सभी व्रत शील संयम कार्यकारी हों नहीं।।

जब तक यह जीव एक परमशुद्ध पवित्र भाव को नहीं जानता, तब तक व्रत, तप, संयम और शील – ये कुछ भी कार्यकारी नहीं होते।

(दूहा–३२)

पुण्णिं पावइ सग्ग जिउ, पावएँ णरय–णिवासु।
बे छंडिवि अप्पा मुणइ, तो लब्भइ सिववासु।।

(हरिगीत)

पुण्य से हो स्वर्ग नर्क निवास होवे पाप से।
पर मुक्ति–रमणी प्राप्त होती आत्मा के ध्यान से।।

पुण्य से जीव स्वर्ग पाता है और पाप से नरक; परन्तु जो पाप एवं पुण्य दोनों को छोड़कर आत्मा को जानता है, वह मोक्ष प्राप्त करता है।

(दूहा-३३)

वउ तउ संजमु सीलु जिय, इउ सव्वइँ ववहारु।
मोक्खहँ कारणु एक्कु मुणि, जो तइलोयहँ सारु।।

(हरिगीत)

व्रत शील संयम तप सभी हैं मुक्तिमग व्यवहार से।
त्रैलोक्य में जो सार है वह आतमा परमार्थ से।।

हे जीव ! व्रत, तप, संयम एवं शील तो व्यवहार से मोक्ष का कारण है। निश्चय से तो जो तीन लोक का सार है - ऐसा एक आत्मा ही मोक्ष का कारण है।

(दूहा-३४)

अप्पा अप्पइँ जो मुणइ, जो परभाउ चएइ।
सो पावइ सिवपुरि-गमणु, जिणवरु एम भणेइ।।

(हरिगीत)

परभाव को परित्याग कर अपनत्व आतम में करे।
जिनदेव ने ऐसा कहा शिवपुर गमन वह नर करे।।

जिनेन्द्र देव कहते हैं कि जो जीव आत्मा से आत्मा को जानता है और परभाव को छोड़ देता है, वही शिवपुरी को जाता है।

(दूहा-३५)

छह दव्वइँ जे जिण-कहिय, णव पयत्थ जे तत्त।
विवहारेण य उत्तिया, ते जाणियहि पयत्त।।

(हरिगीत)

व्यवहार से जिनदेव ने छह द्रव्य तत्त्वारथ कहे।
हे भव्यजन ! तुम विधीपूर्वक उन्हें भी पहिचान लो।।

हे भाई ! जिनेन्द्र देव ने जो छह द्रव्य, सात तत्त्व और नौ पदार्थ कहे हैं, वे सब व्यवहारनय से कहे हैं। तुम उनको प्रयत्न करके जानो।

(दूहा-३६)

सव्व अचेयण जाणि जिय, एक्क सचेयणु सारु।
जो जाणेविणु परम-मुणि, लहु पावइ भवपारु।।

(हरिगीत)

है आतमा बस एक चेतन आतमा ही सार है।
बस और सब हैं अचेतन यह जान मुनिजन शिव लहैं।।

जगत के सर्व पदार्थ अचेतन हैं। मात्र एक जीव ही सचेतन है और वही सार अर्थात् श्रेष्ठ है। उसे जानकर परममुनि शीघ्र संसार-सागर से पार हो जाते हैं।

(दूहा-३७)

जइ णिम्मलु अप्पा मुणहि, छंडिवि सहु ववहारु।
जिण-सामिउ एमइ भणइ, लहु पावइ भवपारु।।

(हरिगीत)

जिनदेव ने ऐसा कहा निज आतमा को जान लो।
यदि छोड़कर व्यवहार सब तो शीघ्र ही भवपार हो।।

हे योगी ! यदि तू सर्व व्यवहार को छोड़कर एक निर्मल आत्मा को ही जाने तो शीघ्र संसार से पार हो जाए - ऐसा जिनस्वामी कहते हैं।

(सोरठा-३८)

जीवाजीवहँ भेउ, जो जाणइ तिं जाणियउ।
मोक्खहँ कारण एउ, भणइ जोइ जोइहिँ भणिउँ।।

(हरिगीत)

जो जीव और अजीव के गुणभेद को पहिचानता।
है वही ज्ञानी जीव वह ही मोक्ष का कारण कहा।।

हे योगी ! जो जीव और अजीव के भेद को जानता है, वही वास्तव में सब कुछ जानता है। तथा जीव और अजीव के भेदज्ञान को ही योगियों ने मोक्ष का कारण कहा है।

(दूहा–३९)

केवल–णाण–सहाउ, सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ।
जइ चाहहि सिव–लाहु, भणइ जोइ जोइहिँ भणिउँ।।

(हरिगीत)

यदि चाहते हो मोक्षसुख तो योगियों का कथन यह।
हे जीव! केवलज्ञानमय निज आतमा को जान लो।।

हे जीव ! यदि तू मोक्ष प्राप्त करना चाहता है तो केवलज्ञान–स्वभावी आत्मा को जान – ऐसा योगियों ने कहा है।

(चौपाई–४०)

को सुसमाहि करउ को अंचउ, छोपु–अछोपु करिवि को वंचउ।
हल सहि कलहु केण समाणउ, जहिँ कहिँ जोवउ तहिँ अप्पाणउ।।

(हरिगीत)

सुसमाधि अर्चन मित्रता अर कलह एवं वंचना।
हम करें किसके साथ किसकी हैं सभी जब आतमा।।

अहो ! कौन समाधि करे? कौन पूजन करे? कौन छूआछूत करके अपने आप को ठगे? कौन किससे मैत्री करे? कौन किससे कलह करे? जहाँ देखो, वहाँ आत्मा ही है।

(दूहा–४१)

ताम कुतित्थइँ परिभमइ, धुत्तिम ताम करेइ।
गुरुहु पसाएँ जाम णवि, अप्पा–देउ मुणेइ।।

(हरिगीत)

गुरुकृपा से जबतक कि आतमदेव को नहिं जानता।
तबतक भ्रमे कुत्तीर्थ में अर ना तजे जन धूर्तता।।

यह जीव तभी तक कुतीर्थों में भ्रमण करता है, धूर्तता करता है, जब तक कि गुरु के प्रसाद से अपने आत्मदेव को नहीं जानता है।

विशेष :– यहाँ 'कुतीर्थ' शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं – १. मिथ्यातीर्थ, और २. कु = पृथ्वी अर्थात् दुनियाभर के सब तीर्थ।

(दूहा–४२)

तित्थइँ देवलि देउ णवि, इम सुइकेवलि–वुत्तु।
देहा–देवलि देउ जिणु, एहउ जाणि णिरुत्तु।।

(हरिगीत)

श्रुतकेवली ने यह कहा ना देव मन्दिर तीर्थ में।
बस देह–देवल में रहे जिनदेव निश्चय जानिये।।

श्रुतकेवलियों ने कहा है कि देव तीर्थों और मन्दिरों में नहीं है, अपितु देव तो देहरूपी देवालय में ही रहता है – ऐसा निःसन्देह जानो।

(दूहा–४३)

देहा–देवलि देउ जिणु, जणु देवलिहिँ णिएइ।
हासउ महु पडिहाइ इहु, सिद्धे भिक्ख भमेइ।।

(हरिगीत)

जिनदेव तनमन्दिर रहें जन मन्दिरों में खोजते।
हँसी आती है कि मानो सिद्ध भोजन खोजते।।

अहो ! जिनदेव तो इस देहरूपी देवालय में रहते हैं, परन्तु लोग उसे मन्दिरों में देखते हैं, खोजते हैं। मुझे यह देखकर बड़ी हँसी आती है कि ये सिद्ध होकर भी भिक्षा–हेतु भ्रमण करते हैं।

(दूहा–४४)

मूढा देवलि देउ णवि, णवि सिलि लिप्पइ चित्ति।
देहा–देवलि देउ जिणु, सो बुज्झहि समचित्ति।।

(हरिगीत)

देव देवल में नहीं रे मूढ! ना चित्राम में।
वे देह–देवल में रहें सम चित्त से यह जान ले।।

हे मूढ़ ! देव मन्दिर में नहीं है। किसी मूर्ति, लेप या चित्र में भी देव नहीं है। देव तो इस देहरूपी देवालय में है। उसे तू समभाव से जान।

(दूहा–४५)

तित्थइ देउलि देउ जिणु, सव्वु वि कोइ भणेइ।
देहा–देउलि जो मुणइ, सो बुहु को वि हवेइ।।

(हरिगीत)

सारा जगत यह कहे श्री जिनदेव देवल में रहें।
पर विरल ज्ञानी जन कहें कि देह–देवल में रहें।।

देव तीर्थों और मन्दिरों में है – ऐसा सब कहते हैं, परन्तु ऐसा ज्ञानी कोई विरला ही होता है जो मानता है कि देव तो इस देहरूपी देवालय में ही है।

(दूहा–४६)

जइ जर–मरण–करालियउ, तो जिय धम्म करेहि।
धम्म–रसायणु पियहि तुहुँ, जिम अजरामर होहि।।

(हरिगीत)

यदि जरा भी भय है तुझे इस जरा एवं मरण से।
तो धर्मरस का पान कर हो जाय अजरा–अमर तू।।

हे जीव ! यदि तू जरा–मरण से भयभीत है तो धर्म कर, धर्म–रसायन का पान कर; ताकि तू अजर–अमर हो सके।

(सोरठा–४७)

धम्मु ण पढ़ियइँ होइ, धम्मु ण पोत्था–पिच्छियइँ।
धम्मु ण मढिय–पएसि, धम्मु ण मत्था–लुंचियइँ।।

(हरिगीत)

पोथी पढ़े से धर्म ना ना धर्म मठ के वास से।
ना धर्म मस्तक लुंच से ना धर्म पीछी ग्रहण से।।

पढ़ने से धर्म नहीं होता, पुस्तक व पिच्छी से भी धर्म नहीं होता, मठ में रहने से भी धर्म नहीं होता, और केशलोंच करने से भी धर्म नहीं होता।

(दूहा–४८)

राय–रोस बे परिहरिवि, जो अप्पाणि वसेइ।
सो धम्मु वि जिण–उत्तियउ, जो पंचम–गइ णेइ[1] ।।४८।।

(हरिगीत)

परिहार कर रुष–राग आतम में बसे जो आतमा।
बस पायगा पंचम गति वह आतमा धर्मातमा।।

जो जीव राग और द्वेष – इन दोनों को छोड़कर आत्मा में वास करता है, उसे ही जिनेन्द्र देव ने धर्म कहा है। वह धर्म जीव को पंचम गति (मोक्ष) में ले जाता है।

(दूहा–४९)

आउ गलइ णवि मणु गलइ, णवि आसा हु गलेइ।
मोहु फुरइ ण वि अप्पहिउ, इम संसार भमेइ।।

(हरिगीत)

आयू गले मन ना गले ना गले आशा जीव की।
मोह स्फुरे हित ना स्फुरे यह दुर्गति इस जीव की।।

अहो ! आयु गल रही है, पर मन नहीं गल रहा है, न ही आशा गल रही है। मोह तो स्फुरित हो रहा है, परन्तु आत्महित का स्फुरण नहीं हो रहा है। यही कारण है कि यह जीव संसार में भ्रमण कर रहा है।

(दूहा–५०)

जेहउ मणु विसयहँ रमइ, तिमु जइ अप्प मुणेइ।
जोइउ भणइ हो जोइयहु, लहु णिव्वाणु लहेइ।।

(हरिगीत)

ज्यों मन रमे विषयानि में यदि आतमा में त्यों रमे।
योगी कहें हे योगिजन! तो शीघ्र जावे मोक्ष में।।

हे योगियो ! यदि यह मन जिस तरह विषयों में रमण करता है, उस तरह आत्मा को जानने में लगे – आत्मा में रमण करे तो शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त करे – ऐसा योगी कहते हैं।

१. पाठान्तर : देइ।

(दूहा-५१)

जेहउ जज्जरु णरय-घरु, तेहउ बुज्झि सरीरु।
अप्पा भावहि णिम्मलउ, लहु पावहि भवतीरु।।

(हरिगीत)

'जरजरित है नरक सम यह देह' - ऐसा जानकर।
यदि करो आतम भावना तो शीघ्र ही भव पार हो।।

हे योगी ! तू इस शरीर को नरकगृह के समान जर्जर (पुराना, व्यर्थ, बुरा) समझ, और एक निर्मल आत्मा की ही भावना कर, ताकि तुझे शीघ्र निर्वाण प्राप्त हो।

(दूहा-५२)

धंधइ पडियउ सयल जगि, णवि अप्पा हु मुणंति।
तहिं कारणि ए जीव फुडु, ण हु णिव्वाणु लहंति।।

(हरिगीत)

धंधे पड़ा सारा जगत निज आतमा जाने नहीं।
बस इसलिए ही जीव यह निर्वाण को पाता नहीं।।

अहो, संसार में सब लोग अपने-अपने धंधे में फँसे हुए हैं और आत्मा को नहीं पहिचानते हैं। यही कारण है कि वे निर्वाण को नहीं प्राप्त करते - यह स्पष्ट है।

(दूहा-५३)

सत्थ पढंतहँ ते वि जड, अप्पा जे ण मुणंति।
तहिं कारणि ए जीव फुडु, ण हु णिव्वाणु लहंति।।

(हरिगीत)

शास्त्र पढ़ता जीव जड़ पर आतमा जाने नहीं।
बस इसलिए ही जीव यह निर्वाण को पाता नहीं।।

जो जीव शास्त्रों को पढ़ते हुए भी आत्मा को नहीं जानते, वे भी जड़ ही हैं और इसीकारण से वे भी निर्वाण को नहीं प्राप्त करते हैं - यह स्पष्ट है।

(दूहा-५४)

मणु-इंदिहि वि छोडियइ, बुहु पुच्छियइ ण कोइ।
रायहँ पसरु णिवारियइ, सहज उपज्जइ सोइ।।

(हरिगीत)

परतंत्रता मन-इन्द्रियों की जाय फिर क्या पूछना।
रुक जाय राग-द्वेष तो हो उदित आतम भावना।।

यदि कोई ज्ञानी जीव मन और इन्द्रियों से छुटकारा प्राप्त कर ले, तो उसे किसी से कुछ पूछने की आवश्यकता नहीं है। वह राग के प्रसार को रोक देता है और उसे सहज ही आत्मभाव प्रकट हो जाता है।

(दूहा-५५)

पुग्गलु अण्णु जि अण्णु जिउ, अण्णु वि सहु ववहारु।
चयहि वि पुग्गलु गहहि जिउ, लहु पावहि भवपारु।।

(हरिगीत)

जीव पुद्गल भिन्न हैं अर भिन्न सब व्यवहार है।
यदि तजे पुद्गल गहे आतम सहज ही भवपार है।।

पुद्गल अलग है और जीव अलग है। अन्य सब व्यवहार भी जीव से अलग है। हे जीव ! पुद्गल को छोड़ो और जीव को ग्रहण करो, ताकि तुम शीघ्र ही संसार से पार होओ।

(दूहा-५६)

जे णवि मण्णहिं जीव फुडु, जे णवि जीउ मुणंति।
ते जिण-णाहहँ उत्तिया, णउ संसार मुचंति।।

(हरिगीत)

ना जानते-पहिचानते निज आतमा गहराई से।
जिनवर कहें संसार-सागर पार वे होते नहीं।।

जो लोग जीव को नहीं जानते हैं और उसकी श्रद्धा नहीं करते हैं, वे कभी भी संसार से मुक्त नहीं होते - ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

(दूहा–५७)

रयण दीउ दिणयर दहिउ, दुद्धु घीव पाहाणु।
सुण्णउ रुउ फलिहउ अगिणि, णव दिट्ठंता जाणु।।

(हरिगीत)

रतन दीपक सूर्य घी दधि दूध पत्थर अर दहन।
सुवर्ण रूपा स्फटिक मणि से जानिये निज आत्मन्।।

जीव को समझने के लिए इन ९ दृष्टान्तों को अच्छी तरह समझो – १. रत्न, २. दीप, ३. सूर्य, ४. दही–दूध–घी (अथवा दही–दूध में घी), ५. पाषाण, ६. सोना, ७. चाँदी, ८. स्फटिक मणि और ९. अग्नि।

(दूहा–५८)

देहादिउ जो परु मुणइ, जेहउ सुण्णु अयासु।
सो लहु पावइ बंभु परु, केवलु करइ पयासु।।

(हरिगीत)

शून्य नभ सम भिन्न जाने देह को जो आतमा।
सर्वज्ञता को प्राप्त हो अर शीघ्र पावे आतमा।।

जो जीव शून्य आकाश की भाँति देहादि को भी पर मानता है, वह शीघ्र परब्रह्म को प्राप्त करता है और केवलज्ञान का प्रकाश करता है।

(दूहा–५९)

जेहउ सुद्ध अयासु जिय, तेहउ अप्पा वुत्तु।
आयासु वि जडु जाणि जिय, अप्पा चेयणुवंतु।।

(हरिगीत)

आकाश सम ही शुद्ध है निज आतमा परमातमा।
आकाश है जड़ किन्तु चेतन तत्त्व तेरा आतमा।।

हे जीव ! जिनेन्द्र देव ने कहा है कि जैसा आकाश शुद्ध है, वैसा ही यह आत्मा भी शुद्ध है। उसमें भी आकाश तो जड़ है, परन्तु आत्मा चेतन है।

(दूहा–६०)

णासग्गिँ अब्भिंतरहँ, जे जोवहिँ असरीरु।
बाहुडि जम्मि ण संभवहिं, पिवहिं ण जणणी–खीरु।।

(हरिगीत)

नासाग्र दृष्टिवंत हो देखें अदेही जीव को।
वे जनम धारण ना करें ना पियें जननी–क्षीर को।।

जो जीव नासाग्र दृष्टि से अपने अन्तर में अशरीरी आत्मा को देखते हैं, वे इस संसार में पुनः लज्जाजनक जन्म धारण नहीं करते, माँ का दूध नहीं पीते।

(दूहा–६१)

असरीरु वि सुसरीरु मुणि, इहु सरीरु जडु जाणि।
मिच्छा–मोहु परिच्चयहि, मुत्ति णियं वि ण माणि।।

(हरिगीत)

अशरीर को सुशरीर अर इस देह को जड़ जान लो।
सब छोड़ मिथ्या–मोह इस जड़ देह को पर मान लो।।

हे जीव ! यद्यपि यह आत्मा अशरीरी है, तथापि तुम इसे स्वशरीर–प्रमाण भी मानो। तथा यह भी अच्छी तरह जानो कि शरीर तो जड़ और मूर्तिक है, परन्तु आत्मा जड़ और मूर्तिक नहीं है, अतः तुम अपने मिथ्या–मोह का त्याग करो और शरीर–जैसा स्वयं को मत मानो।

(दूहा–६२)

अप्पइँ अप्पु मुणंतयहँ, किं णेहा फलु होइ।
केवल–णाणु वि परिणवइ, सासय–सुक्खु लहेइ।।

(हरिगीत)

अपनत्व आतम में रहे तो कौन–सा फल ना मिले?
बस होय केवलज्ञान एवं अखय आनँद परिणमे।।

अहो, आत्मा से आत्मा को जानने पर यहाँ कौन–सा फल नहीं मिलता? केवलज्ञान तक हो जाता है और जीव को शाश्वत सुख की भी प्राप्ति हो जाती है।

(दूहा-६३)

जे परभाव चएवि मुणि, अप्पा अप्प मुणंति।
केवल-णाण-सरुव लइ, ते संसारु मुचंति।।

(हरिगीत)

परभाव को परित्याग जो अपनत्व आतम में करें।
वे लहें केवलज्ञान अर संसार-सागर परिहरें।।

जो मुनि समस्त परभावों का त्याग करके आत्मा से आत्मा को पहिचानते हैं, वे केवलज्ञान पाकर संसार से मुक्त हो जाते हैं।

(दूहा-६४)

धण्णा ते भयवंत बुह, जे परभाव चयंति।
लोयालोय-पयासयरु, अप्पा विमल मुणंति।।

(हरिगीत)

हैं धन्य वे भगवन्त बुध परभाव जो परित्यागते।
जो लोक और अलोक ज्ञायक आतमा को जानते।।

अहो ! धन्य हैं वे भगवन्त ज्ञानी पुरुष जो सर्व परभावों का त्याग कर देते हैं और लोकालोक-प्रकाशक निर्मल आत्मा की श्रद्धा करते हैं।

(दूहा-६५)

सागारु वि णागारु कु वि, जो अप्पाणि वसेइ।
सो लहु पावइ सिद्धि-सुहु, जिणवरु एम भणेइ।।

(हरिगीत)

सागार या अनगार हो पर आतमा में वास हो।
जिनवर कहें अतिशीघ्र ही वह परमसुख को प्राप्त हो।।

सागार (गृहस्थ) हो या अनगार (मुनि) - जो कोई भी आत्मा में निवास करता है, वही शीघ्र सिद्धि-सुख को प्राप्त करता है - ऐसा जिनवर कहते हैं।

(दूहा-६६)

विरला जाणहिं तत्तु बुह, विरला णिसुणहिं तत्तु।
विरला झायहिं तत्तु जिय, विरला धारहिं तत्तु।।

(हरिगीत)

विरले पुरुष ही जानते निज तत्त्व को विरले सुनें।
विरले करें निज ध्यान अर विरले पुरुष धारण करें।।

अहो ! कोई विरला ज्ञानी ही तत्त्व को सुनता है, विरला ज्ञानी ही तत्त्व को जानता है, विरला ज्ञानी ही तत्त्व का ध्यान करता है और विरला ज्ञानी ही तत्त्व को अपने हृदय में धारण करता है।

(दूहा-६७)

इहु परियण ण हु महुतणउ, इहु सुहु-दुक्खहँ हेउ।
इम चिंतंतहँ किं करइ, लहु संसारहँ छेउ।।

(हरिगीत)

'सुख-दुःख के हैं हेतु परिजन किन्तु वे परमार्थ से।
मेरे नहीं' - यह सोचने से मुक्त हों भवभार से।।

जो जीव ऐसा चिन्तन करते हैं कि ये परिजन मेरे नहीं हैं, अपितु ये तो क्षणिक सुख-दुःख के हेतु हैं, वे शीघ्र ही संसार का अन्त कर देते हैं।

(दूहा-६८)

इंद फणिंद णरिंद य वि, जीवहँ सरणु ण होंति।
असरणु जाणिवि मुणि-धवल, अप्पा अप्प मुणंति।।

(हरिगीत)

नागेन्द्र इन्द्र नरेन्द्र भी ना आतमा को शरण दें।
यह जानकर हि मुनीन्द्रजन निज आतमा शरणा गहें।।

इन्द्र, फणीन्द्र और नरेन्द्र भी जीवों को शरण नहीं हैं; अतः उन सब को अशरण जानकर उत्तम मुनिराज तो एक आत्मा से ही आत्मा को जानते हैं।

(दूहा-६९)

इक्क उपज्जइ मरइ कु वि, दुहु सुहु भुंजइ इक्कु।
णरयहँ जाइ वि इक्क जिउ, तह णिव्वाणहँ इक्कु।।

(हरिगीत)

जन्मे-मरे सुख-दुःख भोगे नरक जावे एकला।
अरे! मुक्तीमहल में भी जायेगा जिय एकला।।

जीव अकेला ही पैदा होता है और अकेला ही मरता है। अकेला ही सुख भोगता है और अकेला ही दुःख भोगता है। अकेला ही नरक में जाता है और अकेला ही निर्वाण में जाता है।

(दूहा-७०)

एक्कुलउ जइ जाइसिहि, तो परभाव चएहि।
अप्पा झायहि णाणमउ, लहु सिव-सुक्ख लहेहि।।

(हरिगीत)

यदि एकला है जीव तो परभाव सब परित्याग कर।
ध्या ज्ञानमय निज आतमा अर शीघ्र शिवसुख प्राप्त कर।।

हे भाई ! इसप्रकार यदि सर्वत्र तू अकेला ही जाता है और अकेला ही जाएगा तो समस्त परभावों का त्याग कर दे और एक ज्ञानमय आत्मा का ही ध्यान कर, ताकि तुझे शीघ्र ही मोक्ष-सुख प्राप्त हो।

(दूहा-७१)

जो पाउ वि सो पाउ मुणि, सब्बु इ को वि मुणेहि।
जो पुण्णु वि पाउ वि भणइ, सो बुह को वि हवेइ।।

(हरिगीत)

हर पाप को सारा जगत ही बोलता - यह पाप है।
पर कोई विरला बुध कहे कि पुण्य भी तो पाप है।।

अहो ! जो पाप है उसे तो सभी पाप मानते हैं, परन्तु जो पुण्य को भी पाप कहता है वह कोई विरला ज्ञानी ही होता है।

(दूहा-७२)

जह लोहम्मिय णियउ बुह, तह सुण्णम्मिय जाणि।
जे सुहु असुह परिच्चयहिं, ते वि हवंति हु णाणि।।

(हरिगीत)

लोह और सुवर्ण की बेड़ी में अन्तर है नहीं।
शुभ-अशुभ छोड़ें ज्ञानिजन दोनों में अन्तर है नहीं।।

हे ज्ञानी ! जैसी लोहे की बेड़ी होती है, वैसी ही सोने की बेड़ी होती है; अतः वास्तव में ज्ञानी तो वे ही हैं जो शुभ और अशुभ दोनों का त्याग कर देते हैं।

(दूहा-७३)

जइया मणु णिग्गंथु जिय, तइया तुहुँ णिग्गंथु।
जइया तुहुँ णिग्गंथु जिय, तो लब्भइ सिवपंथु।।

(हरिगीत)

हो जाय जब निर्ग्रन्थ मन निर्ग्रन्थ तब ही तू बने।
निर्ग्रन्थ जब हो जाय तू तब मुक्ति का मारग मिले।।

हे जीव ! जब तेरा मन निर्ग्रन्थ होगा, तभी तू सच्चा निर्ग्रन्थ होगा। और जब तू ऐसा सच्चा निर्ग्रन्थ होगा, तभी मोक्षमार्ग को प्राप्त कर सकेगा।

(दूहा-७४)

जं वडमज्झहँ बीउ फुडु, बीयहँ वडु वि हु जाणु।
तं देहहँ देउ वि मुणहि, जो तइलोय-पहाणु।।

(हरिगीत)

जिस भाँति बड़ में बीज है उस भाँति बड़ भी बीज में।
बस इस तरह त्रैलोक्य जिन आतम बसे इस देह में।।

जिसप्रकार जैसे वट में बीज होता है वैसे ही बीज में वट भी स्पष्ट ज्ञात होता है, उसीप्रकार इस देह में भी इस त्रिलोकप्रधान देव की श्रद्धा करो।

(दूहा–७५)

जो जिण सो हउँ सो जि हउँ, एहउ भाउ णिभंतु।
मोक्खहँ कारण जोइया, अण्णु ण तंतु ण मंतु।।

(हरिगीत)

जिनदेव जो मैं भी वही इस भाँति मन निर्भ्रान्त हो।
है यही शिवमग योगिजन ! ना मंत्र एवं तंत्र है।।

हे योगी ! जो जिन है वही मैं हूँ और जो मैं हूँ वही जिन है – ऐसी निःसंदेह भावना करो; क्योंकि यही एक मोक्ष का कारण है। अन्य कोई तन्त्र–मन्त्र आदि मोक्ष का कारण नहीं है।

(दूहा–७६)

बे ते चउ पंच वि णवह, सत्तहँ छह पंचाहँ।
चउगुण–सहियउ सो मुणह, एयइँ लक्खण जाहँ।।

(हरिगीत)

दो तीन चउ अर पाँच नव अर सात छह अर पाँच फिर।
अर चार गुण जिसमें बसें उस आतमा को जानिए।।

हे योगी ! दो, तीन, चार, पाँच, नौ, सात, छह, पाँच और चार गुण, इनको आत्मा के लक्षण जानो।

(दूहा–७७)

बे छंडिवि बे–गुण–सहिउ, जो अप्पाणि वसेइ।
जिणु सामिउ एमइँ भणइ, लहु णिव्वाणु लहेइ।।

(हरिगीत)

दो छोड़कर दो गुण सहित परमातमा में जो बसे।
शिवपद लहें वे शीघ्र ही – इस भाँति सब जिनवर कहें।।

जो जीव दो दोषों को छोड़कर और दो गुणों से सहित होकर आत्मा में निवास करता है, वह शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त करता है – ऐसा जिन स्वामी कहते हैं।

(दूहा–७८)

तिहिँ रहियउ तिहिँ गुण–सहिउ, जो अप्पाणि वसेइ।
सो सासय–सुइ–भायणु वि, जिणवरु एम भणेइ।।

(हरिगीत)

तज तीन त्रयगुण सहित निज परमातमा में जो बसे।
शिवपद लहें वे शीघ्र ही – इस भाँति सब जिनवर कहें।।

जो जीव तीन दोषों से रहित होकर और तीन गुणों से सहित होकर आत्मा में निवास करता है, वह शाश्वत सुख का पात्र होता है – ऐसा जिनवर कहते हैं।

(दूहा–७९)

चउ–कसाय–सण्णा–रहिउ, चउ–गुण–सहियउ वुत्तु।
सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ, जिम परु होहि पवित्तु।।

(हरिगीत)

जो रहित चार कषाय संज्ञा चार गुण से सहित हो।
तुम उसे जानो आतमा तो परमपावन हो सको।।

हे जीव ! जो चार कषायों व चार संज्ञाओं से रहित है और चार गुणों से सहित हैं, उस आत्मा की श्रद्धा कर, ताकि तू परम–पवित्र हो सके।

(दूहा–८०)

बे–पंचहँ रहियउ मुणहि, बे–पंचहँ संजुत्तु।
बे–पंचहँ जो गुणसहिउ, सो अप्पा णिरु वुत्तु।।

(हरिगीत)

जो दश रहित दश सहित एवं दश गुणों से सहित हो।
तुम उसे जानो आतमा अर उसी में नित रत रहो।।

हे जीव ! जो दस से रहित है, दस से सहित है और दस गुणों से भी सहित है, उसे ही निश्चय से आत्मा कहा गया है। तुम उसकी श्रद्धा करो।

(दूहा–८१)

अप्पा दंसणु णाणु मुणि, अप्पा चरणु वियाणि।
अप्पा संजमु सील तउ, अप्पा पच्चक्खाणि।।

(हरिगीत)

निज आतमा है ज्ञान दर्शन चरण भी निज आतमा।
तप शील प्रत्याख्यान संयम भी कहे निज आतमा।।

आत्मा ही दर्शन है, आत्मा ही ज्ञान है, आत्मा ही चारित्र है, आत्मा ही संयम है, आत्मा ही शील है, आत्मा ही तप है और आत्मा ही प्रत्याख्यान भी है। इसे अच्छी तरह जानो।

(दूहा–८२)

जो परियाणइ अप्प परु, सो परु चयइ णिभंतु।
सो सण्णासु मुणेहि तहुँ, केवल–णाणिं उत्तु।।

(हरिगीत)

जो जान लेता स्व–पर को निर्भ्रान्त हो वह पर तजे।
जिन–केवली ने यह कहा कि बस यही संन्यास है।।

जो जीव स्व और पर को अच्छी तरह जान लेता है, वह निःसन्देह पर का त्याग कर देता है। बस इसे ही संन्यास समझो – ऐसा केवलज्ञानियों ने कहा है।

(दूहा–८३)

रयणत्तय–संजुत्त जिउ, उत्तिमु तित्थु पवित्तु।
मोक्खहँ कारण जोइया, अण्णु ण तंतु ण मंतु।।*

(हरिगीत)

रतनत्रय से युक्त जो वह आतमा ही तीर्थ है।
है मोक्ष का कारण वही ना मंत्र है ना तंत्र है।।

हे योगी ! रत्नत्रय से संयुक्त जीव ही उत्तम पवित्र तीर्थ है और वही मोक्ष का कारण है। अन्य कोई मंत्र–तंत्र आदि मोक्ष का कारण नहीं है।

* किसी–किसी प्रति में इन दोनों दोहों में क्रमविपर्यय पाया जाता है अर्थात् ८३ के स्थान पर ८४वाँ और ८४ के स्थान पर ८३वाँ दोहा पाया जाता है।

(दूहा–८४)

दंसणु जं पिच्छियइ बुह, अप्पा विमल महंतु।
पुणु पुणु अप्पा भावियए, सो चारित्त पवित्तु।।*

(हरिगीत)

निज देखना दर्शन तथा निज जानना ही ज्ञान है।
जो हो सतत वह आतमा की भावना चारित्र है।।

जो निर्मल आत्मा को देखा जाता है वही दर्शन है, जो निर्मल आत्मा को जाना जाता है वही श्रेष्ठ ज्ञान है और जो निर्मल आत्मा की पुनः पुनः भावना की जाती है वही पवित्र चारित्र है।

(दूहा–८५)

जहिं अप्पा तहिं सयल–गुण, केवलि एम भणंति।
तिहिं कारणएँ जोइ फुडु, अप्पा विमलु मुणंति।।

(हरिगीत)

जिन–केवली ऐसा कहें – 'तहँ सकल गुण जहँ आतमा।'
बस इसलिए ही योगीजन ध्याते सदा ही आतमा।।

जहाँ आत्मा है, वहीं सारे गुण हैं – ऐसा केवलज्ञानी कहते हैं। यही कारण है कि योगीजन सदा एक निर्मल आत्मा को ही जानते रहते हैं।

(दूहा–८६)

एक्कलउ इंदिय–रहियउ, मण–वय–काय–ति–सुद्धि।
अप्पा अप्पु मुणेहि तुहुँ, लहु पावहि सिव–सिद्धि।।

(हरिगीत)

तू एकला इन्द्रिय रहित मन वचन तन से शुद्ध हो।
निज आतमा को जान ले तो शीघ्र ही शिवसिद्ध हो।।

हे भाई ! यदि तू आत्मा को बद्ध या मुक्त मानेगा तो निःसन्देह बँधेगा और यदि तू सहज–स्वरूप में रमण करेगा तो मोक्षरूप शान्त अवस्था को प्राप्त करेगा।

(दूहा–८७)

जइ बद्धउ मुक्कउ मुणहि, तो बंधियहि णिभंतु।
सहज–सरूवइ जइ रमहि, तो पायहि सिव संतु।।

(हरिगीत)

यदि बद्ध और अबद्ध माने बँधेगा निर्भ्रान्त ही।
जो रमेगा सहजात्म में तो पायेगा शिव शान्ति ही।।

हे भाई ! यदि तू आत्मा को बद्ध या मुक्त मानेगा तो निःसन्देह बँधेगा और यदि तू सहज–स्वरूप में रमण करेगा तो मोक्षरूप शान्त अवस्था को प्राप्त करेगा।

(दूहा–८८)

सम्माइट्ठी–जीवडहँ, दुग्गइ–गमणु ण होइ।
जइ जाइ वि तो दोसु णवि, पुव्वक्किउ खवणेइ[1]।।

(हरिगीत)

जो जीव सम्यग्दृष्टि दुर्गति–गमन ना कबहूँ करें।
यदि करें भी ना दोष पूरब करम को ही क्षय करें।।

सम्यग्दृष्टि जीव का दुर्गति में गमन नहीं होता। यदि कदाचित् होता भी है तो कोई दोष नहीं है, क्योंकि उससे वह पूर्वकृत कर्मों का क्षय ही करता है।

(दूहा–८९)

अप्प–सरूवइँ जो रमइ, छंडिवि सहु ववहारु।
सो सम्माइट्ठी हवइ, लहु पावइ भवपारु।।

(हरिगीत)

सब छोड़कर व्यवहार नित निज आतमा में जो रमें।
वे जीव सम्यग्दृष्टि तुरतहिं शिवरमा में जा रमें।।

जो जीव सर्व व्यवहार को छोड़कर आत्मस्वरूप में रमण करता है, वह सम्यग्दृष्टि है और वह शीघ्र ही संसार से पार हो जाता है।

१. पाठान्तर : खउ होइ।

(दूहा–९०)

जो सम्मत्त–पहाण बुहु, सो तइलोय–पहाणु।
केवल–णाण वि लहु लहइ, सासय–सुक्ख–णिहाणु।।*

(हरिगीत)

सम्यक्त्व का प्राधान्य तो त्रैलोक्य में प्राधान्य भी।
बुध शीघ्र पावे सदा सुखनिधि और केवलज्ञान भी।।

जो सम्यक्त्व–प्रधान ज्ञान है, वही तीन लोक में श्रेष्ठ है। उसी से शीघ्र केवलज्ञान एवं शाश्वत सुख के निधान को प्राप्त किया जा सकता है।

(दूहा–९१)

अजरु अमरु गुण–गण–णिलउ, जहिं अप्पा थिरु ठाइ।
सो कम्मेहिं ण बंधियउ, संचिय–पुव्व विलाइ।।*

(हरिगीत)

जहँ होय थिर गुणगणनिलय जिय अजर अमृत आतमा।
तहँ कर्मबंधन हों नहीं झर जाँय पूरब कर्म भी।।

जो जीव अजर, अमर और गुणों के भण्डार – ऐसे आत्मा में स्थिर हो जाता है, वह नवीन कर्मों से नहीं बँधता, अपितु उसके पूर्वसंचित कर्मों का भी नाश हो जाता है।

(दूहा–९२)

जह सलिलेण ण लिप्पियइ, कमलणि–पत्त कया वि।
तह कम्मेहिं ण लिप्पियइ, जइ रइ अप्प–सहावि।।

(हरिगीत)

जिसतरह पद्मनि–पत्र जल से लिप्त होता है नहीं।
निजभावरत जिय कर्ममल से लिप्त होता है नहीं।।

अर्थ :– जिस तरह कमलिनी–पत्र कभी भी जल से लिप्त नहीं होता, उसी तरह यदि आत्मस्वभाव में लीनता हो तो जीव कर्मों से लिप्त नहीं हो।

* किसी–किसी प्रति में इन दोनों दोहों में क्रमविपर्यय पाया जाता है अर्थात् ९० के स्थान पर ९१वाँ और ९१ के स्थान पर ९०वाँ दोहा पाया जाता है।

(दूहा–९३)

जो सम–सुक्ख–णिलीणु बुहु, पुण पुण अप्पु मुणेइ।
कम्मक्खउ करि सो वि फुडु, लहु णिव्वाणु लहेइ।।

(हरिगीत)

लीन समसुख जीव बारम्बार ध्याते आतमा।
वे कर्म क्षयकर शीघ्र पावें परमपद परमातमा।।

जो समसुख में लीन ज्ञानी पुनः पुनः आत्मा को जानता है वह शीघ्र ही कर्मों का क्षय करके निर्वाण को प्राप्त करता है।

(दूहा–९४)

पुरिसायार–पमाणु जिय, अप्पा एहु पवित्तु।
जोइज्जइ गुण–गण–णिलउ, णिम्मल–तेय–फुरंतु।।

(हरिगीत)

पुरुष के आकार जिय गुणगणनिलय सम सहित है।
यह परमपावन जीव निर्मल तेज से स्फुरित है।।

हे जीव ! यह आत्मा पुरुषाकार है, पवित्र है, गुणों का भण्डार है और निर्मल तेज से स्फुरायमान दिखाई देता है।

(दूहा–९५)

जो अप्पा सुद्धु वि मुणइ, असुइ–सरीर–विभिण्णु।
सो जाणइ सत्थइँ सयल, सासय–सुक्खहँ लीणु।।

(हरिगीत)

इस अशुचि–तन से भिन्न आतमदेव को जो जानता।
नित्य सुख में लीन बुध वह सकल जिनश्रुत जानता।।

जो आत्मा को शुद्ध एवं अशुचि शरीर से अत्यन्त भिन्न मानता है, वही सारे शास्त्रों को जानता है और वही शाश्वत सुख में लीन होता है।

(दूहा–९६)

जो णवि जाणइ अप्पु परु, णवि परभाउ चएइ।
सो जाणउ सत्थइँ सयल, ण हु सिवसुक्खु लहेइ।।

(हरिगीत)

जो स्व–पर को नहीं जानता छोड़े नहीं परभाव को।
वह जानकर भी सकल श्रुत शिवसौख्य को ना प्राप्त हो।।

जो जीव स्व और पर को नहीं जानता है और परभावों का त्याग भी नहीं करता है, वह भले ही सर्वशास्त्रों को जानता हो, पर मोक्ष–सुख को प्राप्त नहीं करता।

(दूहा–९७)

वज्जिय सयल–वियप्पइँ परम–समाहि लहंति।
जं विंदहिं साणंदु क वि सो सिव–सुक्ख भणंति।।

(हरिगीत)

सब विकल्पों का वमन कर जम जाय परम समाधि में।
तब जो अतीन्द्रिय सुख मिले शिवसुख उसे जिनवर कहें।।

जीव जब समस्त विकल्पों से रहित होकर परमसमाधि को प्राप्त करते हैं, उस समय उनको जिस आनन्द का अनुभव होता है, उसे मोक्ष–सुख कहते हैं।

(दूहा–९८)

जो पिंडत्थु पयत्थु बुह, रूवत्थु वि जिण–उत्तु।
रूवातीतु मुणेहि लहु, जिम परु होहि पवित्तु।।

(हरिगीत)

पिण्डस्थ और पदस्थ अर रूपस्थ रूपातीत जो।
शुभ ध्यान जिनवर ने कहे जानो कि परमपवित्र हो।।

हे ज्ञानी ! जिनेन्द्र द्वारा कथित पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत ध्यानों को भलीप्रकार समझो, ताकि तुम शीघ्र ही परम पवित्र हो जाओ।

(दूहा–९९)

सव्वे जीवा णाणमया, जो सम–भाव मुणेइ।
सो सामाइउ जाणि फुडु, जिणवर एम भणेइ।।

(हरिगीत)

'जीव हैं सब ज्ञानमय'–इस रूप जो समभाव हो।
है वही सामायिक कहें जिनदेव इसमें शक न हो।।

जिनवर देव कहते हैं कि जब यह जीव समभाव के द्वारा ऐसा जानता है कि सब जीव ज्ञानमय हैं, तब उसके सामायिक होता है – ऐसा स्पष्ट जानो।

(दूहा–१००)

राय–रोस ये परिहरिवि, जो समभाउ मुणेइ।
सो सामाइउ जाणि फुडु, केवलि एम भणेइ।।

(हरिगीत)

जो राग एवं द्वेष के परिहार से समभाव हो।
है वही सामायिक कहें जिनदेव इसमें शक न हो।।

केवलज्ञानी कहते हैं कि राग और द्वेष दोनों को छोड़कर जो समभाव धारण किया जाता है, वही सामायिक है – ऐसा स्पष्ट जानो।

(दूहा–१०१)

हिंसादिउ–परिहारु करि, जो अप्पा हु ठवेइ।
सो बियऊ चारित्तु मुणि, जो पंचम–गइ णेइ।।

(हरिगीत)

हिंसादि के परिहार से जो आत्म–स्थिरता बढ़े।
यह दूसरा चारित्र है जो मुक्ति का कारण कहा।।

जो जीव हिंसादि का त्याग करके आत्मा को आत्मा में स्थापित करता है, उसके छेदोपस्थापना नामक दूसरा चारित्र होता है, जो जीव को पंचम गति में ले जाता है।

(दूहा–१०२)

मिच्छादिउ जो परिहरणु, सम्मद्दंसण–सुद्धि।
सो परिहार–विसुद्धि मुणि, लहु पावहि सिव–सिद्धि।।

(हरिगीत)

जो बढ़े दर्शनशुद्धि मिथ्यात्वादि के परिहार से।
परिहारशुद्धी चरित जानो सिद्धि के उपहार से।।

मिथ्यात्वादिक के परिहार (त्याग) से जो सम्यग्दर्शन की शुद्धि होती है, उसे परिहारविशुद्धि नामक तीसरा चारित्र जानो। इससे जीव शीघ्र मोक्षसिद्धि को प्राप्त करता है।

(दूहा–१०३)

सुहुमहँ लोहहँ जो विलउ, जो सुहुमु वि परिणामु।
सो सुहुमु वि चारित्त मुणि, सो सासय–सुह–धामु।।

(हरिगीत)

लोभ सूक्ष्म जब गले तब सूक्ष्म सुध–उपयोग हो।
है सूक्ष्मसाम्पराय जिसमें सदा सुख का भोग हो।।

सूक्ष्म लोभ के नष्ट हो जाने पर जो सूक्ष्म परिणाम होता है उसे सूक्ष्मसाम्पराय नामक चारित्र जानो। वह अविनाशी सुख का धाम है।

(दूहा–१०४)

अरहंतु वि सो सिद्धु फुडु, सो आयरिउ वियाणि।
सो उवझायउ सो जि मुणि, णिच्छइँ अप्पा जाणि।।

(हरिगीत)

अरहंत सिद्धाचार्य पाठक साधु हैं परमेष्ठी पण।
सब आतमा ही हैं श्री जिनदेव का निश्चय कथन।।

निश्चय से आत्मा ही अरिहंत है, आत्मा ही सिद्ध है, आत्मा ही आचार्य है, आत्मा ही उपाध्याय है और आत्मा ही मुनि है – ऐसा जानो।

(दूहा-१०५)

सो सिउ संकरु विण्हु सो, सो रुद्धु वि सो बुद्धु।
सो जिणु ईसरु बंभु सो, सो अणंतु सो सिद्धु।।

(हरिगीत)

वह आतमा ही विष्णु है जिन रुद्र शिव शंकर वही।
बुद्ध ब्रह्मा सिद्ध ईश्वर है वही भगवन्त भी।।

आत्मा ही शिव है, आत्मा ही शंकर है, आत्मा ही विष्णु है, आत्मा ही रुद्र है, आत्मा ही बुद्ध है, आत्मा ही जिन है, आत्मा ही ब्रह्मा है, आत्मा ही अनन्त है और आत्मा ही सिद्ध भी है।

(दूहा-१०६)

एव हि लक्खण-लक्खियउ, जो परु णिक्कलु देउ।
देहहँ मज्झहिँ सो वसइ, तासु ण विज्जइ भेउ।।

(हरिगीत)

इन लक्षणों से विशद लक्षित देव जो निर्देह है।
कोई भी अन्तर है नहीं जो देह-देवल में रहे।।

उपर्युक्त विविध नामों से लक्षित जो परम निष्कल (शरीर रहित) देव है, वह इस शरीर में ही रहता है। उसमें और इसमें कोई अन्तर नहीं है।

(दूहा-१०७)

जे सिद्धा जे सिज्झिहिहिँ, जे सिज्झहिँ जिण-उत्तु।
अप्पा-दंसणिँ ते वि फुडु, एहउ जाणि णिभंतु।।

(हरिगीत)

जो होंयगे या हो रहे या सिद्ध अबतक जो हुए।
यह बात है निर्भ्रान्त वे सब आत्मदर्शन से हुए।।

जितने भी जीव भूतकाल में सिद्ध हुए हैं, भविष्य में होंगे और वर्तमान में हो रहे हैं, वे सब आत्मदर्शन से ही हो रहे हैं – ऐसा निःसन्देह जानो।

(दूहा-१०८)

संसारहँ भय-भीयएँ, जोगिचंद-मुणिएण।
अप्पा-संबोहण कया, दोहा इक्क-मणेण।।

(हरिगीत)

भवदुखों से भयभीत योगीचन्द्र मुनिवर देव ने।
ये एकमन से रचे दोहे स्वयं को संबोधने।।

संसार से भयभीत योगीन्दु मुनि ने आत्मसम्बोधन के लिए एकाग्र मन से इन दोहों की रचना की है।

जोइन्दु मुनिवर देव ने दोहे रचे अपभ्रंश में।
लेकर उन्हीं का भाव मैंने रख दिया हरिगीत में।।

– • –

परिशिष्ट–१

योगसार–प्रश्नोत्तरी

प्रश्न – १. सर्वप्रथम यह बताइए कि जैन–साहित्य में 'योगसार' नाम के प्रमुख ग्रन्थ कितने मिलते हैं? कौन–कौन?

उत्तर – जैन–साहित्य में 'योगसार' नाम के तीन ग्रन्थ मिलते हैं :– (i) मुनिराज योगीन्दु द्वारा रचित योगसार, (ii) आचार्य अमितगति द्वारा रचित योगसार प्राभृत, (iii) भट्टारक श्रुतकीर्ति द्वारा रचित योगसार।

प्रश्न – २. प्रस्तुत 'योगसार' की रचना कब और किसने की?

उत्तर – प्रस्तुत 'योगसार' की रचना आज से लगभग १३०० वर्ष पूर्व मुनिराज योगीन्दु देव ने की है।

प्रश्न – ३. मुनिराज योगीन्दु देव के विषय में आप क्या जानते हैं?

उत्तर – मुनिराज योगीन्दु देव जिन–अध्यात्म के उत्कृष्ट ज्ञाता थे। वे अत्यन्त सरल–सुबोध ढंग से आत्मकल्याण का मार्ग समझाने में समर्थ थे। वे आज से लगभग १३०० वर्ष पूर्व इसी पवित्र भारत–भूमि पर विचरण करते थे। उन्होंने 'योगसार' के अतिरिक्त एक 'परमात्मप्रकाश' नाम के श्रेष्ठ ग्रन्थ की भी रचना की है।

प्रश्न – ४. 'योगसार' की रचना किस भाषा में हुई है?

उत्तर – 'योगसार' की रचना अपभ्रंश भाषा में हुई है।

प्रश्न – ५. अपभ्रंश भाषा के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं?

उत्तर – अपभ्रंश भाषा प्राकृत और संस्कृत जैसी ही एक महत्त्वपूर्ण भाषा है। उसका समय सामान्यतया ५वीं शती से १५वीं शती तक माना जाता है। अपभ्रंश भाषा को हम संस्कृत और हिन्दी के बीच की महत्त्वपूर्ण कड़ी कह सकते हैं। यदि संस्कृत भाषा हिन्दी भाषा की नानी है तो अपभ्रंश भाषा उसकी माँ है।

प्रश्न – ६. 'योगसार' की रचना मुख्यतः किस छन्द में हुई है और उनकी कुल संख्या कितनी है?

उत्तर – 'योगसार' की रचना मुख्यतः 'दोहा' (दूहा) छन्द में हुई है और उनकी कुल संख्या १०८ है। इनमें ३ सोरठे (सोरठी दूहा) और १ चौपाई (चउपदी दूहा) भी सम्मिलित है।

प्रश्न – ७. 'योगसार' पर अब तक क्या–क्या साहित्यिक कार्य हुए हैं? सूची प्रस्तुत कीजिए?

उत्तर – (क) हिन्दी–व्याख्या : (i) कविवर बुधजनजी (योगसार भाषा)
(ii) पं.पन्नालाल चौधरी(योगसार–वचनिका)
(iii) ब्र. शीतलप्रसादजी (योगसार टीका)

(ख) संपादन : (i) पण्डित पन्नालाल सोनी (सन् १९२२)
(ii) डॉ. ए.एन. उपाध्ये (सन् १९३७)

(ग) हिन्दी–गद्यानुवाद : (i) डॉ. जगदीशचन्द्र शास्त्री
(ii) डॉ. कमलेश कुमार जैन
(iii) डॉ. वीरसागर जैन

(घ) संपादन–अनुवाद : (i) डॉ. कमलेश कुमार जैन
(ii) डॉ. वीरसागर जैन

(ड़) हिन्दी–पद्यानुवाद : (i) आचार्य विद्यासागरजी
(ii) मुंशी नाथूराम
(iii) डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

(च) योगसार–चयनिका:(i) डॉ. कमलचन्द सोगानी

(छ) योगसार–प्रश्नोत्तरी:(ii) डॉ. वीरसागर जैन

प्रश्न – ८. 'योगसार' के नामकरण की सार्थकता पर प्रकाश डालिए?

उत्तर – (क) जो जीवन का सार है, ऐसे योग का इसमें वर्णन है, इसलिए इसका 'योगसार' नाम सार्थक है।

(ख) जो सम्पूर्ण जिनवाणी का सार है, ऐसे योग का वर्णन है, इसलिए भी इसका 'योगसार' नाम सार्थक है।

(ग) इसमें सार अर्थात् श्रेष्ठ या उत्तम योग का वर्णन है, इसलिए भी इसका 'योगसार' नाम सार्थक है।

प्रश्न – ९. क्या योग भी उत्तम और जघन्य दो प्रकार का होता है?

उत्तर – हाँ, योग भी उत्तम और जघन्य दो प्रकार का होता है। पूर्ण योग को उत्तम योग कहते हैं और अल्प योग को जघन्य योग कहते हैं। केवलज्ञानी जीवों के उत्तम योग होता है और अल्पज्ञानी जीवों के जघन्य योग होता है। आत्मस्वरूप में पूर्ण लीनता को उत्तम योग कहते हैं और आंशिक लीनता को जघन्य योग कहते हैं।

प्रश्न–१०. क्या उत्तम और जघन्य की तरह और भी कोई भेद योग के होते हैं?

उत्तर – हाँ, योग के भेद बहुत प्रकार से किये जा सकते हैं। पूर्ण वीतराग आत्मानुभूति की अपेक्षा से योग एक ही प्रकार का है। उत्तम और जघन्य के रूप में योग के दो भेद होते हैं। उत्तम, मध्यम और जघन्य – इसप्रकार योग के ३ भेद भी किये जा सकते हैं। यदि और आगे बढ़ें तो कह सकते हैं कि योग के शब्द की अपेक्षा संख्यात, अर्थ की अपेक्षा असंख्यात और भाव की अपेक्षा अनन्त भेद होते हैं।

प्रश्न–११. 'योग' की परिभाषा क्या है?

उत्तर – जहाँ सर्व वाह्याभ्यन्तर विकल्पों का त्याग होकर केवल एक शुद्ध चैतन्य मात्र में स्थिति होती है वही योग है। योग, ध्यान, समाधि, साम्य, स्वास्थ्य, चित्तनिरोध और शुद्धोपयोग – ये सब पर्यायवाची हैं। (जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश ४/४१४)

प्रश्न–१२. 'योगसार' के मंगलाचरण में किसको नमस्कार किया गया है?

उत्तर – 'योगसार' के मंगलाचरण में सर्वप्रथम समस्त कर्मकलंक से रहित सिद्ध परमात्मा को नमस्कार किया गया है। उसके बाद चार घातिया कर्मों से रहित एवं अनन्त चतुष्टय से सहित अरिहन्त परमात्मा को भी विनयपूर्वक नमस्कार किया गया है।

प्रश्न –१३. 'योगसार' के मंगलाचरण का पहला दोहा हिन्दी–अर्थ सहित लिखिए?

उत्तर – ''णिम्मल–झाण–परिट्ठिया कम्म–कलंक डहेवि।
अप्पा लद्धउ जेण परु ते परमप्प णवेवि।।''

जिसने निर्मल ध्यान में पूर्णतः स्थित होकर कर्मरूपी कलंक को जला दिया है और अपने आत्मा को उपलब्ध कर लिया है, उस परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ।

प्रश्न–१४. चार घातिया कर्म कौन–से हैं और अनन्त चतुष्टय क्या है?

उत्तर – चार घातिया कर्मों के अभाव से आत्मा में अनन्त चतुष्टय प्रकट होते हैं, जो इसप्रकार हैं :–

घातिया कर्म	अनन्त चतुष्टय
ज्ञानावरण	अनन्त ज्ञान
दर्शनावरण	अनन्त दर्शन
मोहनीय	अनन्त सुख
अन्तराय	अनन्त वीर्य

प्रश्न–१५. 'योगसार' के दोहों की रचना किनके लिए की गई है?

उत्तर – 'योगसार' के दोहों की रचना उन भव्यजीवों के लिए की गई है जो संसार से भयभीत हैं और मोक्ष के लिए लालायित हैं। तथा आत्मसंबोधन के लिए भी इनकी रचना की गई है। (दोहा ३ व १०८)

प्रश्न–१६. संसार से भयभीत होने का अर्थ क्या है?

उत्तर – (क) 'संसार' का अर्थ है –आत्मा के मोह–राग–द्वेष रूप भाव। अतः जो जीव अपने मोह–राग–द्वेषरूप भावों से डरते हैं, वस्तुतः वे ही संसार से भयभीत हैं।

(ख) मोह–राग–द्वेष रूप भावों का फल चतुर्गति में परिभ्रमण है, अतः चतुर्गति–परिभ्रमण को भी 'संसार' कहते हैं। जो जीव चतुर्गति–परिभ्रमण से डरते हैं वे संसार से भयभीत हैं।

(ग) इनके अतिरिक्त विश्व की किसी भी वस्तु का नाम 'संसार' नहीं है।

प्रश्न–१७. मोक्ष के लिए लालायित होने का अर्थ क्या है?

उत्तर – मोक्ष का अर्थ है – पूर्ण स्वाधीनता अथवा पूर्ण निराकुलता। जिन जीवों के हृदय में पूर्ण स्वाधीनता अथवा पूर्ण निराकुलता की तीव्र अभिलाषा है, वे ही वस्तुतः मोक्ष के लिए लालायित

हैं।

प्रश्न–१८. आत्मा कितने प्रकार का है? कौन–कौन?

उत्तर – आत्मा तीन प्रकार का है : बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। (दोहा ६)

प्रश्न–१९. बहिरात्मा किसे कहते हैं?

उत्तर – जो जीव मिथ्यादर्शन से मोहित है और परमात्मा को (अथवा स्व और पर को) नहीं पहिचानता है वह बहिरात्मा है। अथवा – जो देहादि परपदार्थों को ही आत्मा मानता है, वह बहिरात्मा है। (दोहा ७ व १०)

प्रश्न–२०. अन्तरात्मा (पण्डित आत्मा) किसे कहते हैं?

उत्तर – जो जीव परमात्मा को (अथवा स्व और पर को) पहिचानता है और सर्व परभावों का त्याग कर देता है, वह अन्तरात्मा (पण्डित आत्मा) है। (दोहा ८)

प्रश्न–२१. परमात्मा किसे कहते हैं?

उत्तर – जो निर्मल है, निष्कल है, शुद्ध है, जिन है, विष्णु है, बुद्ध है, शिव है और शान्त है, वही परमात्मा है – ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है। (दोहा ९)

प्रश्न–२२. परमात्मा के उक्त सभी नामों का सही अर्थ क्या है?

उत्तर – (क) निर्मल = राग–द्वेषादि मल से रहित।
(ख) निष्कल = कल अर्थात् शरीर से रहित।
(ग) शुद्ध = राग–द्वेषादि अशुद्धता से रहित।
(घ) जिन = कर्म–शत्रुओं एवं इन्द्रिय–मन के विजेता।
(ङ) विष्णु = ज्ञान की अपेक्षा सर्वव्यापक।
(च) बुद्ध = पूर्ण ज्ञान से युक्त अर्थात् सर्वज्ञ।
(झ) शिव = मोक्ष–अवस्था को प्राप्त।
(ज) शान्त = सर्व आकुलता से रहित।

प्रश्न–२३. बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा में से कौन हेय[१] है और कौन उपादेय[२]?

उत्तर – बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा में से बहिरात्मा सर्वथा हेय है और परमात्मा सर्वथा उपादेय। अन्तरात्मा कथंचित् उपादेय भी है और कथंचित् हेय भी। बहिरात्म–दशा की अपेक्षा उपादेय है और परमात्म–दशा की अपेक्षा हेय।

प्रश्न–२४. बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा की चर्चा शास्त्रों में कहाँ–कहाँ मिलती है?

उत्तर – बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा की चर्चा मुख्यरूप से निम्नलिखित शास्त्रों में मिलती है :–
(क) आचार्य कुन्दकुन्द कृत नियमसार, गाथा १४९–१५०
(ख) आचार्य कुन्दकुन्द कृत मोक्षपाहुड, गाथा ५
(ग) आचार्य कुन्दकुन्द कृत रयणसार, गाथा १४१
(घ) आचार्य पूज्यपाद कृत समाधितंत्र, श्लोक ४,५,६
(ङ) कुमारस्वामी कृत कार्ति केयानुप्रेक्षा,गाथा १९३–१९४
(च) मुनिराजयोगीन्दुदेव कृत परमात्मप्रकाश,दूहा १/१३–१५
(छ) मुनिराज योगीन्दुदेव कृत योगसार, दूहा ७,८,९

प्रश्न–२५. मार्गणास्थान किसे कहते हैं? वे कितने हैं? कौन–कौन?

उत्तर – जिन भावों के द्वारा अथवा जिन पर्यायों में जीव को खोजा जाता है, उन्हें मार्गणास्थान कहते हैं। वे १४ हैं :– १. गति, २. इन्द्रिय, ३. काय, ४. योग, ५.वेद, ६.कषाय, ७.ज्ञान, ८.संयम, ९. दर्शन, १०.लेश्या, ११.भव्यत्व, १२.सम्यक्त्व, १३.संज्ञी, १४. आहारक। (जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, ३/२९६)

प्रश्न–२६. गुणस्थान किसे कहते हैं? वे कितने हैं? कौन–कौन?

उत्तर – मोह और योग (मन–वचन–काय की प्रवृत्ति) के कारण जीव के अन्तरंग परिणामों में प्रतिक्षण होने वाले उतार–चढ़ाव का नाम गुणस्थान है। वे १४ कहे गये हैं :– १. मिथ्यात्व, २. सासादन, ३. मिश्र (सम्यग्मिथ्यात्व), ४. अविरत–सम्यक्त्व, ५. संयतासंयत/

१. त्याग करने योग्य, २. ग्रहण करने योग्य।

देशविरत, ६. प्रमत्त-संयत, ७. अप्रमत्त-संयत, ८. अपूर्वकरण, ९. अनिवृत्तिकरण, १०. सूक्ष्म-साम्पराय, ११. उपशान्तकषाय, १२. क्षीणकषाय, १३. सयोगजिन, १४. अयोग-जिन।

(जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, २/२४६

प्रश्न-२७. चौरासी लाख योनियाँ कौन-सी हैं? बताइए।

उत्तर - नित्यनिगोद ७ लाख + इतरनिगोद ७ लाख = १४ लाख।
पृथ्वीकाय ७ लाख + जलकाय ७ लाख +
अग्निकाय ७ लाख + वायुकाय ७ लाख = २८ लाख।
प्रत्येक वनस्पति = १० लाख।
द्वीन्द्रिय २ लाख+त्रीन्द्रिय २ लाख+चतुरिंद्रिय २ लाख = ६ लाख
देव ४ लाख+नारकी ४ लाख+पंचेन्द्रियतिर्यंच ४ लाख=१२ लाख
मनुष्य =१४ लाख।
कुल ८४ लाख।

प्रश्न-२८. जिनेन्द्र देव ने जो ६ द्रव्य, ७ तत्त्व और ९ पदार्थ कहे हैं, वे कौन-कौन हैं? नाम बताइए।

उत्तर : (क) ६ द्रव्य-जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल।
(ख) ७ तत्त्व-जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा व मोक्ष।
(ग) ९ पदार्थ-जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। (दोहा ३५)

प्रश्न-२९. उक्त ६ द्रव्यों में कौन अचेतन व असार हैं और कौन सचेतन व सार हैं?

उत्तर - उक्त ६ द्रव्यों में एक जीव ही सचेतन और सार है, शेष सभी अचेतन व असार हैं। (दोहा ३६)

प्रश्न-३०. यहाँ अन्य सभी द्रव्यों को असार और एक जीवद्रव्य को ही सार किस अपेक्षा से कहा गया है?

उत्तर : एक जीवद्रव्य के आश्रय से ही परमसुख की प्राप्ति होती है, अन्य किसी भी द्रव्य के आश्रय से नहीं - इस अपेक्षा से यहाँ जीव को

ही सार और अन्य सभी को असार कहा गया है। (दोहा ३६)

प्रश्न-३१. यह जीव कब तक कुतीर्थों में भ्रमण करता है, धूर्तता करता है?

उत्तर - यह जीव तभी तक कुतीर्थों में भ्रमण करता है, धूर्तता करता है, जब तक कि गुरु के प्रसाद से देहरूपी देवालय में विराजमान अपने आत्मदेव को नहीं जानता है। (दोहा ४१)

प्रश्न-३२. मुनिराज योगीन्दु देव को क्या देखकर हँसी आती है?

उत्तर - मुनिराज योगीन्दु देव को यह देखकर हँसी आती है कि देव तो देहरूपी देवालय में रहता है, परन्तु लोग उसे मन्दिरों में खोजते फिरते हैं, सिद्ध होकर भी भिक्षा हेतु भ्रमण करते हैं। (दोहा ४३)

प्रश्न-३३. जो धर्म जीव को पंचम गति में ले जाता है, वह क्या पुस्तक-पिच्छी रखने से होता है?

उत्तर - नहीं। जो धर्म जीव को पंचम गति में ले जाता है वह पुस्तक-पिच्छी रखने से भी नहीं होता, मठ में रहने से भी नहीं होता, केशलोंच करने से भी नहीं होता और तीर्थों व मन्दिरों पर जाने में भी नहीं होता। वह तो राग और द्वेष दोनों को छोड़कर आत्मा में वास करने से होता है। (दोहा ४७-४८)

प्रश्न-३४. जीव को समझाने के लिए मुनिराज योगीन्दु देव ने कौन-से नौ दृष्टान्त दिये हैं? उनके नाम बताइए।

उत्तर - जीव को समझाने के लिए मुनिराज योगीन्दु देव ने जिन नौ दृष्टान्तों को गिनाया है, उनके नाम इसप्रकार हैं - १. रत्न, २. दीपक, ३. दिनकर (सूर्य), ४. दही-दूध-घी (अथवा दही-दूध में घी), ५. पाषाण, ६. सोना, ७. चाँदी, ८. स्फटिक मणि और ९. अग्नि। इन दृष्टान्तों का मूल दोहा इस प्रकार है -

''रयण दीउ दिणयर दहिउ दुद्धु घीव पाहाणु।
सुण्णउ रुउ फलिहउ अगिणि णव दिट्ठंता जाणु।।''

(दोहा ५७)

प्रश्न-३५. इन सभी दृष्टान्तों का अभिप्राय स्पष्ट कीजिए?

उत्तर - इन सभी दृष्टान्तों का अभिप्राय संक्षेप में इस प्रकार समझना

चाहिए –)

(i) **रत्न –** आत्मा रत्न के समान मात्र स्व–पर–प्रकाशक है।

(ii) **दीपक–** आत्मा दीपक के समान मात्र स्व–पर–प्रकाशक है। वह कहीं राग–द्वेष नहीं करता।

(iii) **दिनकर (सूर्य) –** आत्मा दिनकर के समान सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करनेवाला दैदीप्यमान पदार्थ है। वह किसी पदार्थ का ग्रहण–त्याग नहीं करता। कहीं राग–द्वेष भी नहीं करता।

(iv) **दही–दूध–घी –** आत्मा दही–दूध–घी के समान एकदम उज्ज्वल और पौष्टिक पदार्थ है। उसका भरपूर सेवन करना चाहिए। अथवा आत्मा दही–दूध में घी के समान है। जिसप्रकार दूध–दही में घी सर्वत्र व्याप्त है और सारभूत है, उसीप्रकार इस शरीर में आत्मा सर्वत्र व्याप्त है और सारभूत है।[१]

(v) **पाषाण –** आत्मा पाषाण के समान अत्यन्त ठोस पदार्थ है। उसमें कोई परपदार्थ प्रवेश नहीं कर सकता।

(vi) **सोना –** आत्मा सोने के समान मूल्यवान और रागादि मल से रहित पदार्थ है।

(vii) **चाँदी –** आत्मा चाँदी के समान उज्ज्वल है।

(viii) **स्फटिक मणि –** आत्मा स्फटिक मणि के समान सर्व परभावों को मात्र प्रतिबिम्बित करता है, उन रूप होता नहीं।

(ix) **अग्नि –** आत्मा सम्पूर्ण ज्ञेयों को जाननेवाला है। (दोहा ५७)

प्रश्न–३६. आत्मा शुद्ध आकाश के समान है – इसका क्या अभिप्राय है?

उत्तर – आत्मा शुद्ध आकाश की भाँति सम्पूर्ण परपदार्थों से अलिप्त है। यद्यपि संयोग में अनन्त परपदार्थ हैं, तथापि स्वभाव से आत्मा सभी से पृथक् है, किसी के साथ एकमेक नहीं हुआ है। कविवर

१. कविवर बनारसीदास ने भी आत्मा को दही–दूध में घी के समान कहा है –
''ज्यों सुवास फल–फूल में, दही–दूध में घीव।
पावक काठ पषाण में, त्यों शरीर में जीव।।
– बनारसी–विलास, अध्यात्मबत्तीसी, छंद ७

दौलतरामजी ने भी एक पद (८४वें) में लिखा है कि ''मैं अज अचल अमल नभ जैसे।'' परन्तु यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि आकाश तो जड़ है, परन्तु आत्मा चेतन है।[१] (दोहा५८–५९)

प्रश्न–३७. मुनिराज योगीन्दु देव ने जन्म धारण करने को कैसा बताया है और पुनः जन्म धारण नहीं करने का क्या उपाय बताया है?

उत्तर – मुनिराज योगीन्दु देव ने जन्म धारण करने को अत्यन्त लज्जाजनक बताया है। उनके अनुसार पुनः जन्म धारण नहीं करने का उपाय यह है कि नासाग्र दृष्टि से अपने अन्तर में अशरीरी आत्मा को देखा जाए। (दोहा ६०)

प्रश्न–३८. आत्मा अशरीरी होकर भी स्वशरीर–प्रमाण है – इसका क्या अभिप्राय है?

उत्तर – आत्मा शरीर नहीं है, शरीर से भिन्न है; शरीर तो जड़ और मूर्त्तिक है, परन्तु आत्मा जड़ और मूर्त्तिक नहीं है, आत्मा तो चेतन और अमूर्तिक है; अतः आत्मा को अशरीरी कहा गया है। तथा अशरीरी होकर भी आत्मा स्वशरीर–प्रमाण ही है, स्वशरीर से छोटा या बड़ा नहीं है, जैसा कि अन्य मतों में माना गया है। अन्य अनेक मतों का कहना है कि आत्मा वटबीज के समान है अथवा कमल पुष्प के समान है अथवा दीपक के आकार का है अथवा सम्पूर्ण लोक में व्याप्त विशालकाय है। उन सबका निराकरण करने के लिए आत्मा को स्वशरीर–प्रमाण कहा गया है।

१. इस विषय में मध्यकालीन हिन्दी संत सुन्दरदास का यह पद देखिए –
''देखो भाई ब्रह्माकाश समान।
परब्रह्म चैतन्य व्योम जड़, यह विशेषता जान।।
दोऊ व्यापक अकल अपरिमित, दोऊ सदा अखण्ड।
दोऊ लिपैं छिपैं कहुं नांहीं, पूरन सब ब्रह्माण्ड।।
ब्रह्म मांहि जगत देखियत, व्योम मांहि पन यौं ही।
जगत अभ्र उपजै अरु बिनसै, वे हैं ज्यों के त्यों ही।।
दोऊ अक्षय अरु अविनासी, दृष्टि मुष्टि नहिं आवैं।
दोऊ नित्य निरन्तर कहिये, यह उपमान बतावैं।।''
– संतकाव्य (परशुराम चतुर्वेदी), पृष्ठ ३८८

(दोहा ६१)

प्रश्न–३९. आत्मा से आत्मा को जानने पर क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर – आत्मा से आत्मा को जानने पर कौन–सा फल प्राप्त नहीं होता? जीव को केवलज्ञान तक हो जाता है और शाश्वत सुख की भी प्राप्ति हो जाती है। (दोहा ६२)

प्रश्न–४०. ''पाप को तो सभी लोग पाप कहते हैं, परन्तु कोई विरले ज्ञानी ऐसा कहते हैं कि पुण्य भी पाप है''– इसका क्या अभिप्राय है?

उत्तर – यद्यपि पुण्य पुण्य ही है, पाप नहीं है; पाप पाप ही है, पुण्य नहीं है; दोनों दो अलग–अलग परिणाम ही हैं, एक नहीं हैं, सर्वथा एक जैसे भी नहीं हैं, क्योंकि दोनों के कारण, रस, स्वभाव, फल आदि में बहुत अन्तर है; तथापि जो विरले ज्ञानी आत्मध्यान में लीन होते हैं, होना चाहते हैं, वे ऐसा कहते हैं कि अरे! पुण्य भी पाप ही है।

ज्ञानियों के इस कथन का अभिप्राय हमें यह समझना चाहिए कि पुण्य भी हेय ही है, त्याज्य ही है। 'पुण्य भी पाप ही है'–इस कथन में 'पाप' शब्द का अर्थ हिंसादि रूप पाप नहीं है, अपितु 'हेय' या 'त्याज्य' ही है – यह हमें अच्छी तरह ध्यान में रखना चाहिए।

यहाँ यदि 'पाप को तो सभी पाप कहते हैं, पर पुण्य भी पाप ही है' – इस कथन की अलंकार शास्त्र की दृष्टि से व्याख्या की जाए तो यह कहा जा सकता है कि उक्त कथन में यमक अलंकार का प्रयोग हुआ है, क्योंकि उसमें प्रथम 'पाप' शब्द का अर्थ तो हिंसादिरूप पाप है और बाद में आने वाले 'पाप' शब्दों का अर्थ बुरा, हेय या त्याज्य है। (दोहा ७१)

प्रश्न–४१. यह जीव कब सच्चा निर्ग्रन्थ होगा?

उत्तर – यह जीव तभी सच्चा निर्ग्रन्थ होगा, जब इसका मन निर्ग्रन्थ (ग्रन्थ

अर्थात् परिग्रह। विशेषतः अन्तरंग परिग्रह से रहित) होगा। (दोहा ७३)

प्रश्न–४२. मुनिराज योगीन्दु देव ने 'संन्यास' की परिभाषा क्या बताई है?

उत्तर – मुनिराज योगीन्दु देव के अनुसार जो जीव स्व और पर को अच्छी तरह जान लेता है, वह निःसन्देह पर का त्याग कर देता है। बस, इसी का नाम संन्यास है। (दोहा ८२)

प्रश्न–४३. मुनिराज योगीन्दु देव के अनुसार उत्तम पवित्र तीर्थ कौन–सा है?

उत्तर – मुनिराज योगीन्दु देव के अनुसार रत्नत्रय से संयुक्त जीव ही उत्तम पवित्र तीर्थ है, क्योंकि एक वही मोक्ष का कारण है, अन्य कुछ नहीं। (दोहा ८३)

प्रश्न–४४. 'सम्यग्दृष्टि जीव का दुर्गति–गमन नहीं होता' – इसका क्या तात्पर्य है?

उत्तर – सम्यग्दृष्टि जीव का दुर्गति–गमन नहीं होता – इसका तात्पर्य यह है कि सम्यग्दृष्टि जीव अगले जन्म में –

(क) पृथ्वीकायादि पंचप्रकार की स्थावर पर्याय में नहीं जाता।

(ख) द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असैनी पंचेन्द्रिय भी नहीं होता। तिर्यञ्च गति में ही नहीं जाता।

(ग) नरक गति में भी नहीं जाता, परन्तु यदि सम्यक्त्व होने से पूर्व नरकायु बंध हुआ हो तो प्रथम नरक में जाता है।

(घ) भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देव नहीं होता। केवल वैमानिक ही हो सकता है।

(ङ) मनुष्यगति में भी स्त्री और नपुंसक नहीं होता। मात्र पुरुष ही हो सकता है। (दोहा ८८)

प्रश्न–४५. ''जो जीव सर्व व्यवहार को छोड़कर आत्मस्वरूप में रमण करता है, वह सम्यग्दृष्टि है'' – यहाँ 'व्यवहार को छोड़ने'

का क्या तात्पर्य है?

उत्तर – यहाँ व्यवहार को छोड़ने का तात्पर्य है कि व्यवहार को परमार्थ मानना छोड़ दिया जाए। (दोहा ८९)

प्रश्न–४६. ''जो जीव सर्व व्यवहार को छोड़कर आत्मस्वरूप में रमण करता है, वह सम्यग्दृष्टि है'' – यहाँ 'आत्मस्वरूप में रमण करता है' का क्या तात्पर्य है?

उत्तर – रमणता दो प्रकार की होती है – १. रुचिरूप रमणता और २. उपयोगरूप रमणता। इनमें पहली श्रद्धा गुण की पर्याय है और दूसरी चारित्र गुण की पर्याय है। यहाँ सम्यग्दृष्टि का प्रसंग है। अतः यहाँ 'रमणता' का तात्पर्य रुचिरूप रमणता ही समझना चाहिए। (दोहा ८९)

प्रश्न–४७. मोक्ष–सुख कैसा होता है?

उत्तर – जब यह जीव समस्त विकल्पों से रहित होकर परमसमाधि को प्राप्त करता है, उस समय इसे जिस अपूर्व आनन्द का अनुभव होता है, उसे मोक्षसुख कहते हैं।

प्रश्न–४८. पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत – इन चारों ध्यानों का स्वरूप स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – ध्यान चार प्रकार का होता है :– आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान

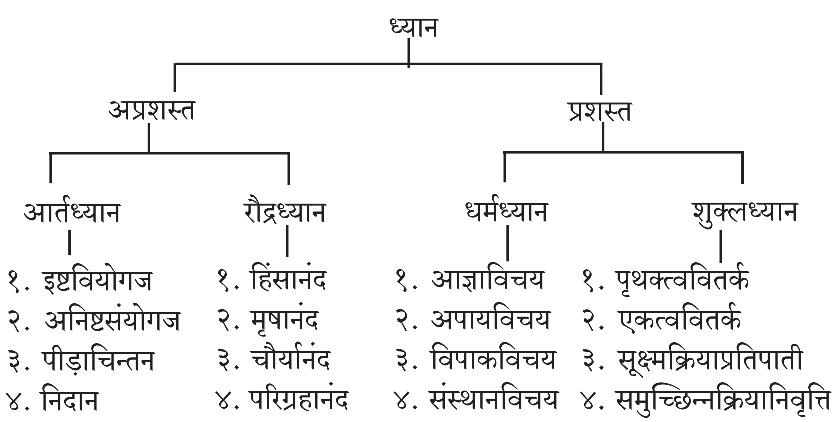

और शुक्लध्यान। इनमें से आर्तध्यान व रौद्रध्यान तो अप्रशस्त ध्यान है और धर्मध्यान व शुक्लध्यान प्रशस्त ध्यान है। इन सबके चार–चार भेद हैं, जिनको संक्षेप में निम्नलिखित सारिणी के द्वारा भली प्रकार समझा जा सकता है :–

पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत – ये चारों भेद संस्थानविचय नामक धर्मध्यान के प्रभेद हैं। इन चारों का स्वरूप संक्षेप में इस प्रकार है –

(क) **पिण्डस्थ –** शरीर में स्थित, पर शरीर से भिन्न ज्ञानस्वरूपी परमात्मा का ध्यान करना पिण्डस्थ ध्यान है।

(ख) **पदस्थ –** मन्त्रवाक्यों या 'णमो अरिहंताणं' आदि पदों के द्वारा ध्यान करना पदस्थ ध्यान है।

(ग) **रूपस्थ –** पुरुषाकारादि रूप से आत्मा का ध्यान करना रूपस्थ ध्यान है।

(घ) **रूपातीत –** सर्व विचारों या चिन्तन से रहित मात्र ज्ञाताद्रष्टा रूप से आत्मा का ध्यानकरना रूपातीत ध्यान है।

(दोहा ९८)

प्रश्न–४९. चारित्र किसे कहते हैं? वह कितने प्रकार का है?

उत्तर – चरण या आचरण को ही चारित्र कहते हैं। वह सामान्यपने आत्मविशुद्धि की दृष्टि से एक प्रकार का है। अंतरंग–बहिरंग अथवा निश्चय–व्यवहार अथवा प्राणिसंयम–इन्द्रियसंयम की अपेक्षा से दो प्रकार का है। उपशम–क्षय–क्षयोपशम अथवा उत्तम–मध्यम–जघन्य की अपेक्षा से तीन प्रकार का है। चार प्रकार के यति अथवा सराग–वीतराग–सयोग–अयोग की अपेक्षा से चार प्रकार का है। तथा सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार–विशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात के भेद से पाँच प्रकार का भी है। इसी तरह चारित्र के संख्यात, असंख्यात और अनन्त भेद भी किये जा सकते हैं। (जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश २/२८२)

प्रश्न-५०. सामायिकादि पाँच प्रकार के चारित्र का क्या स्वरूप है?

उत्तर – (i) **सामायिक –** जब यह जीव राग और द्वेष दोनों को छोड़कर समभाव धारण करता है और समस्त जीवों को भी ज्ञानमय ही जानता है, तब उसके सामायिक चारित्र होता है।

(ii) **छेदोपस्थापना –** हिंसादि का त्याग करके आत्मा को आत्मा में ही स्थापित करने का नाम छेदोपस्थापना है।

(iii) **परिहारविशुद्धि –** मिथ्यात्वादि के परिहार (त्याग) से जो सम्यग्दर्शन की शुद्धि होती है उसे परिहारविशुद्धि कहते हैं।

(iv) **सूक्ष्मसाम्पराय –** सूक्ष्म लोभ के भी नष्ट हो जाने पर जो सूक्ष्म (शुद्ध) परिणाम होता है, उसे सूक्ष्मसाम्पराय कहते हैं।

(v) **यथाख्यात –** कषायों के सर्वथा अभाव से आत्मा की पूर्ण शुद्धता का प्रकट होना ही यथाख्यात चारित्र है।

(दोहा ९९ से १०५)

प्रश्न-५१. 'योगसार' के अन्तिम दोहे में ग्रन्थकार ने क्या भावना प्रकट की है?

उत्तर – संसार से भयभीत मैंने – योगीन्दु मुनि ने – आत्मसम्बोधन के लिए एकाग्र मन से इन दोहों की रचना की है।

(दोहा १०८)

प्रश्न-५२. निम्नलिखित रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :-

(क) जिन्होंने चार घातिया कर्मों को नष्ट करके ....को प्रकट किया है वे अरिहंत जिनेन्द्र हैं। (दोहा २)

(ख) जो जीव गृहव्यापार में स्थित होते हुए भी ..... को पहिचानते हैं और प्रतिदिन..... का ध्यान करते हैं, वे शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त करते हैं। (दोहा १८)

(ग) आत्मा निश्चय से....... प्रमाण है और व्यवहार से........ प्रमाण है। (दोहा २४)

(घ) देव तीर्थों और मन्दिरों में नहीं है, अपितु............रूपी देवालय में ही विराजमान है। (दोहा ४२)

(ङ) देव तीर्थों और मन्दिरों में है – ऐसा सब कहते हैं, परन्तु कोई विरला ज्ञानी मानता है कि देव तो.....में ही है। (दोहा ४५)

(च) अहो ! आयु गल रही है; पर.......नहीं गल रहा है...... नहीं गल रही है। (दोहा ४९)

(छ) अहो ! संसार में सब लोग अपने-अपने..... में फँसे हुए हैं और...... को नहीं जानते हैं। (दोहा ५२)

(ज) जो जीव शास्त्रों को पढ़ते हुए भी...... को नहीं जानते हैं, वे भी जड़ ही हैं। (दोहा ५३)

(झ) पुद्गल अलग है और ....अलग है। ......को छोड़ो और .... को ग्रहण करो। (दोहा ५५)

(ञ) जितने भी जीव भूतकाल में सिद्ध हुए हैं, भविष्य में होंगे और वर्तमान में हो रहे हैं, वे सब........से ही हो रहे हैं। (दोहा १०७)

उत्तर : (क) अनन्तचतुष्टय (ख) हेयाहेय/जिनदेव
(ग) लोक/स्वशरीर (घ) देह
(ङ) दे[illegible] (च) [illegible]/आशा
(छ) धन्धे/आत्मा (ज) आत्मा
(झ) पुद्गल/जीव/जीव (ञ) आत्मदर्शन

अध्यात्मवेत्ता मुनिराज योगीन्दु

"यह बड़े ही दुःख की बात है कि जोइन्दु जैसे महान् अध्यात्मवेत्ता के जीवन के संबंध में विस्तृत वर्णन नहीं मिलता। उनके ग्रन्थों में भी उनके जीवन तथा स्थान के बारे में कोई उल्लेख नहीं मिलता। उनकी रचनायें उन्हें आध्यात्मिक राज्य के उन्नत सिंहासन पर विराजमान एक शक्तिशाली आत्मा के रूप में चित्रित करती हैं। वे आध्यात्मिक उत्साह के केन्द्र हैं।"

– डॉ. ए.एन. उपाध्ये

परमात्मप्रकाश की प्रस्तावना, पृष्ठ १२१

मुनिराज योगीन्दु देव और उनके ग्रन्थ

(विद्वानों के अभिमत)

डॉ. गोपीचन्द पाटनी लिखते हैं :– ''जिस तरह श्री कुंदकुंदाचार्य के समयसार, प्रवचनसार व नियमसार – ये तीन ग्रन्थ आध्यात्मिक विषय की परम सीमा है, उसीप्रकार श्री योगीन्दुदेव द्वारा विरचित 'परमात्मप्रकाश' व 'योगसार' भी आध्यात्मिक विषय की परम सीमा है। जो व्यक्ति ऐसे ग्रन्थों का निष्ठापूर्वक शुद्ध मन से अध्ययन, स्वाध्याय, मनन व अभ्यास करता है वह निश्चय ही मोक्षमार्ग पर चलकर अपने अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।[१]

श्री उदयसिंह भटनागर लिखते हैं कि – ''प्रसिद्ध जैन साधु जोइन्दु (योगीन्दु) जो एक महान विद्वान, वैयाकरण और कवि था, सम्भवतया चित्तौड़ का ही निवासी था।[२]

डॉ. श्रीरंजनसूरिदेव लिखते हैं :– ''जोइन्दु ने ऊँचे आध्यात्मिक तथ्यों को सर्वसुगम भाषा में सामान्य से सामान्य जन तक पहुँचाने का पूलाघनीय राष्ट्रीय कार्य किया है।[३]

डॉ. भागचन्द जैन 'भास्कर' लिखते हैं :– ''आचार्य योगीन्दु अपभ्रंश-साहित्य के कुन्दकुन्द'' हैं जिन्होंने अध्यात्म क्षेत्र को प्रखर भक्त, आध्यात्मिक संत और कठोर साधक थे। उनकी साधक स्वानुभूति और स्वसंवेद्यज्ञान पर आधारित थी, इसलिए उनके ग्रन्थ रहस्य भावना से ओत-प्रोत हैं। उनका हर विचार अनुभूति की पवित्र निकष से निखरा हुआ है और सांप्रदायतीत और कलातीत है।[४]

पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय लिखते हैं – ''जैन-साहित्य का यह मूल ग्रन्थ अपनी गम्भीर विचारधारा के कारण विद्वानों तथा अध्यात्मरसिकों में विशेष प्रख्यात रहा है। यह ग्रन्थ गम्भीर अर्थ का विवेचन करता है और ऐसे सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है जो मौलिक हैं तथा अपनी गम्भीरता के कारण जैन पण्डितों का ध्यान सदा आकृष्ट करते रहे हैं।[५]

१ से ४ जैन विद्या संस्थान श्रीमहावीरजी राजस्थान से प्रकाशित पत्रिका ''जैन विद्या' का योगीन्दु विशेषांक, पृष्ठ संख्या क्रमशः १, २, १६ और ४९.
५. योगसार (सं. डॉ. कमलेशकुमार जैन), आशीर्वचन, पृष्ठ – ७

परिशिष्ट – २

दोहानुक्रमणिका

अजरु अमरु गुण-गण	९१
अप्पइँ अप्पु मुणंतयहँ	६२
अप्प सरूवइँ जो	८९
अप्पा अप्पइँ जो मुणइ	३४
अप्पा अप्पउ जइ	१२
अप्पा दंसण णाणु मुणि	८१
अप्पा दंसणु एक्कु	१६
अरहंतु वि सो सिद्धु	१०४
असरीरु वि सुसरीरु	६१
अह पुणु अप्पा णवि	१५
आउ गलइ णवि मणु	४९
इंद-फणिंद-णरिंद य वि	६८
इक्क उपज्जइ मरइ	६९
इच्छा-रहियउ तव करहि	१३
इहु परियण ण हु	६७
एक्कलउ इंदिय-रहियउ	८६
एक्कुलउ जइ जाइसिहि	७०
एव हि लक्खण-लक्खियउ	१०६
काल अणाइ अणाइ जिउ	४
केवल-णाण-सहाउ सो	३९
को सुसमाहि करउ को	४०
गिहि-वावार-परिट्ठिया	१८
घाइ-चउक्कहँ किउ विलउ	२
चउ-कषाय-सण्णा-रहिउ	७९
चउरासी लक्खहिँ फिरिउ	२५
छह दव्वइँ जे जिण-कहिय	३५
जं वडमज्झहँ बीउ फुडु	७४
जइ जर-मरण-करालियउ	४६
जइ णिम्मल अप्पा मुणइ	३०
जइ णिम्मलु अप्पा मुणहि	३७
जइ बद्धउ मुक्कउ मुणहि	८७
जइ बीहउ चउ-गइ-गमण	५
जइया मणु णिग्गंथु जिय	७३
जह लोहम्मिय णियड बुह	७२
जह सलिलेण ण लिप्पियइ	९२
जहिं अप्पा तहिं सयल-गुण	८५
जाम ण भावहि जीव	२७
जिणु सुमिरहु जिणु चिंतहु	१९
जीवाजीवहँ भेउ जो जाणइ	३८
जो णवि मण्णहि जीव फुडु	५६
जे परभाव चएवि मुणि	७१
जे सिद्धा जे सिज्झिहिहिं	१०७
जेहउ जज्जरु णरय-घरु	५१
जेहउ मणु विसयहँ रमइ	५०
जेहउ सुद्ध अयासु जिय	५९
जो अप्पा सुद्धु वि मुणइ	९५
जो जिण सो हउँ	७५
जो जिणु सो अप्पा मुणहु	२१
जो णवि जाणइ अप्पु परु	९६
जो तइलोयहँ झेउ जिणु	२८
जो परमप्पा सो जि हउँ	२२
जो परियाणइ अप्पु परु जो	८

जो परियाणइ अप्प परु सो	८२
जो पाउ वि सो पाउ मुणि	७१
जो पिंडत्थु पयत्थु बुह	९८
जो सम-सुक्ख-णिलीणु बुहु	९३
जो सम्मत्त-पहाण बुहु सो	९०
णासग्गिँ अब्भिंतरहँ	६०
णिच्छइँ लोय-पमाणु मुणि	२४
णिम्मल-झाण-परिट्ठिया	१
णिम्मलु णिक्कलु सुद्धु जिण	९
ताम कुतित्थइँ परिभमइ	४१
तित्थइँ देउलि देउ जिणु	४५
तित्थहिं देवलि देउ णवि	४२
ति-पयारो अप्पा मुणहि	६
तिहिं रहियउ तिहिं गुण	७८
दंसणु जं पिच्छियइ बुह	८४
देहादिउ जे पर कहिय	१०
देहादिउ जे पर कहिय	११
देहादिउ जो परु मुणइ	५८
देहादेवलि देउ जिणु	४३
धंधइ पडियउ सयल जगि	५२
धण्णा ते भयवंत बुह जे	६४
धम्मु ण पढियइँ होइ	४७
परिणामे बंधु जि कहिउ	१४
पुग्गलु अण्णु जि अण्णु	५५
पुण्णिं पावइ सग्ग जिउ	३२
पुरिसायार-पमाणु जिय	९४
बे छंडिवि बे-गुण-सहिउ	७७
बे ते चउ पंच वि णवहँ	७६
बे-पंचहँ रहियउ मुणहि	८०
मग्गण-गुण-ठाणइ	१७
मिच्छादिउ जो परिहरणु	१०२
मिच्छा-दंसण-मोहियउ	७
मूढा देवलि देउ णवि	४४
मणु-इंदिहि वि छोडियइ	५४
रयणत्तय-संजुत्त जिउ	८३
रयण दीउ दिणयर दहिउ	५७
राय-रोस बे परिहरिवि	४८
राय-रोस बे परिहरिवि	१००
वउ तउ संजमु सीलु जिय	३३
वउ तउ संजमु सीलु जिय	३१
वज्जिय सयल-वियप्पइँ	९७
वय-तव-संजम-मूल-गुण	२९
विरला जाणहिँ तत्तु बुह	६६
संसारहँ भय-भीयएँ	१०८
संसारहँ भय-भीयहँ	३
सत्थ पढंतहँ ते वि जड	५३
सम्माइट्ठी-जीवडहँ दुग्गइ	८८
सव्व अचेयण जाणि जिय	३६
सव्वे जीवा णाणमया	९९
सागारु वि णागारु कुवि	६५
सुद्ध-पएसहँ पूरियउ	२३
सुद्धप्पा अरु जिणवरहँ भेउ	२०
सुद्ध सचेयणु बुद्धु जिणु	२६
सुहुमहँ लोहहँ जो विलउ	१०३
सो सिउ संकरु विण्हु सो	१०५
हिंसादिउ परिहारु करि	१०१